** श्री **

# धार्मिक परीक्षा बोर्ड
रतलाम की

# प्रवेशिका परीक्षा की पाठ्य पुस्तक

## द्वितीय भाग

( द्वितीयखण्ड के लिए )



सम्पादक और प्रकाशक:—

## बालचन्द श्रीश्रीमाल

प्राप्ति स्थानः—

श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज
की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक मण्डल,
रतलाम

मुद्रक—
के. हमीरमल लूणियां
अध्यक्ष-दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर

| प्रथमवार | सम्वत् | मूल्य |
|---|---|---|
| १००० | १९९५ | ॥) |

# प्रार्थना—

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, शिशुगण की प्रभु पूरो आश।
ज्ञानभानु का उदय करो अब, मिथ्या तम का होय विनाश॥
जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन बोलें न कदा।
चोरी कबहुं न करिहैं स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा॥
तृष्णा लोभ न बढ़े हमारा, तोप सुधा नित पिया करें।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, इसकी सेवा किया करें॥
मात पिता की आज्ञा पालें, गुरु की भक्ति धरें उर में।
रहें सदा कर्तव्य परायण, उन्नति कर निज निज पुर में॥
दूर भगावें बुरी रीतियां, सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल मिलाप मिलावें हम सब, धर्मोन्नति का करें विचार॥
सुख दुःख में हम समता धारें, रहें अटल जिमि सदा अचल।
न्याय मार्ग को लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतम बल॥
अष्ट कर्म जो दुःखहेतु हैं, उनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरंतर, विघ्न शोक सबही टलजाय॥
हाथ जोड़कर शीष नमावें, बालक जन सब खड़े खड़े।
आशाएँ हों पूर्ण हमारी, चरण शरण में आन पड़े॥ ८॥

# आवश्यक दो शब्द

यह "प्रवेशिका पाठ्य पुस्तक का द्वितीय भाग" आप के समक्ष उपस्थित है। पुस्तक के सम्पादन करने का कारण मैं प्रथम भाग में दे चुका हूँ, जो आपने पढ़ा ही होगा।

इस पुस्तक में वही सामग्री है जो छात्रों को प्रवेशिका परीक्षा में पढ़ना जरूरी है। इसके पढ़ लेने और स्मरण में रखने से एक जैनधर्मी श्रावक को अपने धर्म का प्रारम्भिक ज्ञान जितना होना चाहिये, उतना ज्ञान हो जाता है।

प्रथम भाग से बचा हुआ प्रतिक्रमण मूल देने के बाद परमात्म द्वात्रिंशतिका प्रार्थना दी गई है। जिसके चिंतन मनन और ध्वनी पूर्वक गाने से चित्त में बहुत समाधि एवं प्रभू भक्ति का संचार होता है। इसके बाद पचीस बोल के थोकड़े का शेषभाग है। उसे भी सरल समझने लायक बनाने की चेष्टा की गई है। इसके बाद भगवान शान्तिनाथ का चरित्र दिया है जिसमें इनके पूर्व भवों का वर्णन विस्तार रूप में है। जिसमें अनेक तत्व और शिक्षा भरी हुई है।

मार्गी अपनी आत्मोन्नति करता हुआ किस प्रकार क्षपकश्रेणी पर पहुँच जाता है यह ठीक समझाकर बताया गया है। पश्चात् कर्म प्रकृति का थोकड़ा है। इसमें आत्मा को उन्नतिपथ में आते हुए रोकने वाले कर्मों के बन्ध और फल (भोगवने) की व्याख्या है जो प्रकृतियों के भेदोपभेद करके बताई गई हैं। पश्चात् भगवान श्री मल्लिनाथ का चरित्र है जिसमें तप संयम की आराधना करते हुए भी कपट भाव रखने का क्या परिणाम होता है यह बताया गया है। पश्चात् अष्टप्रवचन का थोकड़ा है इसमें संयम शुद्ध पालने वालों की प्रवृत्ति कैसी होती है यह बताया है। इसके ज्ञान से हम मुनियों की परीक्षा कर सकते हैं। केवल वेष ही हमारा गुरू नहीं हो सकता। तदनन्तर भगवान अरिष्टनेमि का चरित्र है जो अपना महत्व निराला ही रखता है, अनेक तत्व बोध से भरा हुआ है।

यद्यपि नियमावली में, तीर्थंकर चरित्र तीनों साथ हैं परन्तु छात्रों को बीच में विश्रान्ति मिले, रुची बढ़े और तत्व विभाग में मनोवृत्ति कुंठित नहीं हो, किन्तु इसके द्वारा विकसित होती रहे इसलिये जुदे २ विभाजित कर दिये गये हैं। मैं आशा करता हूँ कि छात्रगणों को यह सम्पादन लाभ दायक होगा। इत्यलम्।

मिती आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा
रतलाम ( मालवा )

भवदीय—
पाखचन्द श्रीश्रीमाल

# अध्यापकों से—

प्रिय अध्यापकगण !

'धार्मिक परीक्षा बोर्ड' के संचालकों का उद्देश्य यह है कि आज के छात्र (जो भावी श्रावक हैं) केवल नाम मात्र के श्रावक न हों किंतु सच्चे श्रावक बनें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही 'धार्मिक परीक्षा बोर्ड' को जन्म दिया गया है। इसके लिये पुस्तकें पढ़ कर परीक्षा देना ही पर्याप्त नहीं है, किंतु यह आवश्यक है कि पुस्तकों द्वारा प्राप्त ज्ञान हृदयंगम किया जावे, और जीवन सुसंस्कृत बनाया जावे। धार्मिक पुस्तकें पढ़ने पर भी यदि जीवन धार्मिक संस्कारयुक्त न बना तो पुस्तकों का पढ़ना एक प्रकार से व्यर्थ है। छात्रों का जीवन धार्मिक संस्कारयुक्त तभी बन सकता है, जब आप लोग उन्हें पढ़ी गई बातों का महत्व एवं उनमें रहा हुआ रहस्य समझावें। साथ ही तदनुसार जीवन बनाने के लिये प्रोत्साहित करते रहें। ऐसा करने पर उनका जीवन भी धार्मिक संस्कारयुक्त बनेगा, और वे बुद्धिगम्य प्रश्नों का उत्तर देने में भी समर्थ हो सकेंगे। मैं आशा करता हूँ कि आप इस ओर लक्ष्य देंगे, तथा जो भाग मौखिक रटने का है वह छात्रों से मौखिक याद करावेंगे और समझाने का भाग पूरी तरह समझावेंगे। फुटनोट में दिया गया मेटर समझाने के लिये ही है, अतः उसे उपेक्षापूर्वक छोड़ न दें।

भवदीय—

वालचन्द श्रीश्रीमाल

# विषय सूची







॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

# * प्रतिक्रमण सूत्र मूल *

इससे पूर्व के प्रतिक्रमण के पाठ प्रथम भाग में पढ़ चुके हो।

## ॥ बड़ी संलेषणा का पाठ ॥

अह भंते अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणा पौषधशाला पुंज, पुंजके उच्चार-पासवण भूमिका पडिलेह पडिलेहके, गमणागमणे पडिक्कम, पडिक्कम के दर्भादिक संथारा संथार संथार के, दर्भादिक संथारा दुरुह, दुरुह के पूर्व तथा उत्तर दिशि सन्मुख पल्यंकादिक आसन से बैठ, बैठ के " करयल संपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजली तिकट्टु " एवं वयासी, " नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं " ऐसे अनन्त सिद्धों को नमस्कार करके, " नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपाविउकामाणं "

जयवंते वर्तमानकाले महाविदेह क्षेत्र में विचरते हुए तीर्थंकरों को नमस्कार करके, अपने धर्माचार्य जी को नमस्कार करके साधुप्रमुख चारों तीर्थ से खमाके, सर्व जीव राशि से खमाके पहले जो व्रत आदरे हैं उनमें जो जो अतिचार दोष लगे हों, वे सर्व आलोच के पडिक्कम कर निंद कर निशल्य होकर, सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि, सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि, सव्वं अदिन्नादाणं पच्चक्खामि, सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि सव्वं कोहं माणं जाव सव्वं मिच्छादंसणसल्लं, सव्वं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावजीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि, मणसा वयसा कायसा, ऐसे अठारह पापस्थानक पच्चक्खके, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामि, जावजीवाए ऐसे चारों आहार पच्चक्खके जंपियं इमं सरीरं इट्ठं, कंतं, पियं, मणुण्णं, मणामं, धिज्जं, विसासियं, सम्मयं, अणुमयं, बहुमयं, भण्डकरण्डसमाणं, रयणकरंडगभूयं, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, मा णं दंसगा, मा णं मसगा, मा णं वाहियं, पित्तियं, कप्फियं, संभीमं, सन्निवाइयं विविहा रोगायंका परिसहा उवसग्गा फासा फुसंतु-एवं पि य णं ...हिं उस्सासनिस्सासेहिं वोसिरामि तिकट्टु ऐसे शरीर

वोसरा के, "कालं अणवकंखमाणे विहरामि" ऐसी ऐसी सद्दहणा परूपणा तो है, फरसना करें तब शुद्धि होय ऐसे अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा आराहणाए पंच अइआरा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं: इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे जीवियासंसप्पओगे मरणासंसप्पओगे, काम भोगासंसप्पओगे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥

## तस्स धम्मस्स का पाठ

तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरओमि विराहणाए तिविहेण पडिक्कंतो वंदामि जिण चउव्वीसं ।

### ॥ पांच पदों की वंदना ॥

पहिले पद श्री अरिहंतजी जघन्य बीस तीर्थङ्करजी, उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर देवाधिदेवजी, उन में वर्तमान काल में वीस विहरमानजी महाविदेह क्षेत्र में विचरते हैं एक हजार आठ लक्षण के धरणहार, चौंतीस अतिशय, पैंतीस वाणी करके विराजमान, चौसठ इन्द्रों के वंदनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित, अनन्त ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त-बल-वीर्य्य, अनन्त सुख, दिव्यध्वनि, भामण्डल, स्फटिक-सिंहासन.

अशोक वृक्ष, कुसुमवृष्टि, देवदुन्दुभि, छत्र, और चॅवर इन आठ महा प्रतिहार्यों से युक्त पुरुषाकार पराक्रम के धरणहार, अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में विचरें, जघन्य दो क्रोड़ केवली, और उत्कृष्ट नव क्रोड़ केवली, केवलज्ञान केवलदर्शन के धरणहार सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जाननहार।

॥ सवैया ॥

नमो श्री अरिहंत, करमों का किया अन्त, हुआ सो केवल-वंत, करुणा भंडारी हैं। अतिशय चौंतीस धार, पैंतीस वाणी उचार, समझावें नर नार, पर उपकारी हैं। शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार, गुण हैं अनन्तसार, दोष परिहारी हैं, कहत तिलोकरिख, मन वच काय करि, लुलि लुलि वारम्बार वंदना हमारी है ॥ १ ॥

ऐसे अरिहंत भगवंत दीनदयाल महाराज! आपकी अविनय आशातना ( दिवस सम्बन्धी ) की हो तो बारम्बार हे अरिहंत भगवन्! मेरा अपराध क्षमा करिये, हाथ जोड़, मान मोड़, शीष नमा कर १००८ बार नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जु-वासामि।

आप मंगलीक हो उत्तम हो हे स्वामी ! हे नाथ ! आपका इस भव परभव भव भव में सदाकाल शरण हो।

दूजे पद श्री सिद्ध भगवान महाराज पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध हैं, आठ कर्म खपाय के मोक्ष पहुँचे हैं। ( १ ) तीर्थसिद्धा ( २ ) अतीर्थसिद्धा ( ३ ) तीर्थंकरसिद्धा ( ४ ) अतीर्थंकरसिद्धा ( ५ ) स्वयंबुद्धसिद्धा ( ६ ) प्रत्येकबुद्धसिद्धा ( ७ ) बुद्धबोधितसिद्धा ( ८ ) स्त्रीलिंगसिद्धा ( ९ ) पुरुषलिंगसिद्धा ( १० ) नपुंसकलिंगसिद्धा ( ११ ) स्वलिंगसिद्धा ( १२ ) अन्यलिंगसिद्धा ( १३ ) गृहस्थलिंगसिद्धा ( १४ ) एकसिद्धा ( १५ ) अनेकसिद्धा, जहां जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, भूख नहीं, तृषा नहीं, जोत में जोत विराजमान सकल कार्य सिद्ध करके चवदे प्रकारे पन्द्रह भेदे अनन्ते सिद्ध भगवंत हुए, अनन्त सुखों में तल्लीन, अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, क्षायिक समकित, निराबाध, अटल अवगाहना अमूर्त, अगुरु लघु, अनन्तवीर्य्य, आठ गुण करके सहित हैं।

॥ सवैया ॥

सकल करम टाल, वश करलियो काल, मुगति में रह्या माल, आतमा को तारी है। देखत सकल भाव, हुवा हैं जगत राव,

सदा ही ज्ञायक भाव, भये अविकारी हैं। अचल अटल रूप, आवे नहीं भवकूप, अनुप सरूप ऊप, ऐसे सिद्धधारी हैं। कहत हैं तिलोकरिख, बताओ ए वास प्रभु, सदा ही उगंते सूर, वन्दणा हमारी है ॥ १ ॥

ऐसे सिद्ध भगवन्तजी महाराज आपकी ( दिवस सम्बन्धी ) अविनय अशातना की हो तो वारम्बार हे सिद्ध भगवन्! मेरा अपराध क्षमा करिये, हाथ जोड़, मान मोड़ शीष नमा कर १००८ बार नमस्कार करता हूँ।

"तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि"।

यावत् भव भव आपका शरण होओ।

तीजे पद श्री आचार्यजी महाराज छत्तीस गुण करके विराजमान पाँच महाव्रत पालें, पाँच आचार पालें, पाँच इन्द्रिय जीतें, चार कषाय टालें, नव वाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पालें, पाँच समित तीन गुप्ति शुद्ध आराधें, आठ सम्पदा ( १ आचारसंपदा २ श्रुतसंपदा ३ शरीरसंपदा ४ वचनसंपदा ५ वाचनासंपदा ६ मतिसंपदा ७ प्रयोगमतिसंपदा ८ संग्रहसंपदा ) सहित हैं।

---

आचार्यजी—संप्रदाय के आचार्य जो स्वयम् शुद्ध आचार पालें अन्य से पलावें।

॥ सवैया ॥

गुण हैं छत्तीस पुर, धरत धरम उर, मारत करम कुर, सुमति विचारी है। शुद्ध सो आचारवंत, सुन्दर है रूप कंत, भण्या सब ही सिद्धान्त, वाँचणी सुप्यारी है। अधिक मधुरवेण, कोई नहीं लोपे केण, सकल जीवाँ को सेण, कीरत अपारी है, कहत हैं तिलोकरिख, हितकारी देत सीख, ऐसे आचारज ताकूं वन्दना हमारी है॥

ऐसे आचारज, न्याय पक्षी, भद्रिक परिणामी, परमपूज्य, कल्पनीक—अचित वस्तु के ग्रहणहार, सचित के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुण के अनुरागी सौभागी हैं। ऐसे श्री आचार्यजी महाराज आपकी ( दिवस सम्बन्धी ) अविनय आशातना की हो तो बारम्बार हे आचार्यजी महाराज! मेरा अपराध क्षमा करिये, हाथ जोड़, मान मोड़, शीष नमा कर १००८ बार नमस्कार करता हूँ।

" तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि "।

यावत भव भव आपका शरण होओ॥

* श्री धर्माचार्यजी महाराज को वन्दना—नमस्कार हो, जो

---

* कोई कोई जगह धर्माचार्यजी की वन्दना पाँचों पदों की वन्दना बोलते हैं सार बोलते जाते हैं।

पाँच आचार पालें, पाँच इन्द्रिय जीतें, क्रियछोहे, क्रियमाने, क्रियमाये, क्रियलोभे, नाणसम्पन्ने, दंसणसम्पन्ने, चरित्तसम्पन्ने, लाघवसम्पन्ने, संजमेणं, तवसा, अप्पाणं भावेमाणे, ग्राम नगर पुर पट्टण सन्निवेशादि में विचरें, धन्य है वह ग्राम नगर जहाँ हमारे धर्माचार्य विराजे हैं, जिनका वचनामृत सुने हैं, कान पवित्र करे हैं, दर्शन कर नेत्र पवित्र करे हैं, सूझता आहार पानी शुद्ध भाव से बहराते हैं, परम उपकारी अनेक गुणधारी हमारे धर्माचार्य ✽ श्री श्री श्री १००८ श्री·························के चरण कमल में एक हजार आठ तिक्खुत्ता के पाठ से त्रिकाल विधि सहित मन वचन काया करके हाथ जोड़ मान मोड़ वन्दना करूँ हूँ, अविनय आशातना हुई हो तो मुझे मुझो अपराध खमजो, भव भव में आपका शरण होजो।

४ चौथे पद श्री उपाध्यायजी, पचीस गुण करके सहित ( ग्यारह अंग बारह उपांग चरणसत्तरी करणसत्तरी इन पचीस गुण करके सहित ) तथा ग्यारह अंग का पाठ अर्थ सहित सम्पूर्ण जानें और १४ पूर्व के पाठक, ग्यारह अंग ( १ ) आचारांग ( २ ) सूयगडांग ( ३ ) ठाणांग ( ४ ) समवायांग ( ५ ) विवाहपन्नत्ती ( ६ ) णायाधम्मकहा ( ज्ञाता धर्मकथा ) ( ७ ) उपासगदसांग

✽ धर्माचार्यजी—अर्थात् गुरु महाराज, जिनके पास समकित ली हो।

( ८ ) अंतगडदसांग ( ९ ) अणुत्तरोववाई ( १० ) पण्णावागरणं ( प्रश्नव्याकरणं ) ( ११ ) विवागसुयं ( विपाकश्रुत )।

बारह उपांग—( १ ) उववाई ( २ ) रायप्पसेणी ( ३ ) जीवाभिगम ( ४ ) पन्नवणा ( ५ ) जम्बूद्वीवपन्नत्ती ( ६ ) चन्दपन्नत्ती ( ७ ) सूरपन्नत्ती, ( ८ ) निरयावलिया, ( ९ ) कप्पवडंसिया, ( १० ) पुप्फिया, ( ११ ) पुप्फचूलिया, ( १२ ) वण्हिदसा।

चार मूलसूत्र—( १ ) उत्तरज्झयणं ( उत्तराध्ययन, ) ( २ ) दसवेयालियसुत्तं, ( दशवैकालिक ), ( ३ ) णंदीसुत्तं, ( नंदीसूत्र ) ( ४ ) अणुओगद्दारं–( अनुयोगद्वार )।

चार छेद—( १ ) दसासुयक्खंधो ( दशाश्रुतस्कंध ), ( २ ) बिहक्कप्पो ( बृहत्कल्प ), ( ३ ) ववहारसुत्तं ( व्यवहारसूत्र ), ( ४ ) णिसीहसुत्तं ( निशीथसूत्र ) और बत्तीसवां आवस्सगं ( आवश्यक ), इत्यादि अनेक ग्रंथ के जानकार, सात नय, निश्चय व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत तथा अन्य मत के जानकार, मनुष्य या देवता कोई भी विवाद में जिनको छलने में समर्थ नहीं, जिन नहीं पण जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं।

॥ सवैया ॥

पढ़त अग्यार अंग, करमों सुं करे जंग, पाखण्डी को मान भंग, करण हुसियारी है। चवदे पूरव धार, जानत आगम सार, भविन के सुखकार, भ्रमता निवारी है। पढ़ावे भविक जन, स्थिर

कर देत मन, तप कर ताते तन, ममता निवारी है। कहत है तिलोकरिख, ज्ञानमातु परिख, ऐसे उपाध्याय ताकुं वन्दना हमारी है।

ऐसे उपाध्यायजी महाराज मिथ्यात्वरूप अन्धकार का मेटन-हार; समकित रूप उद्योत का करनहार धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करें, सारए, वारए, धारए, इत्यादिक अनेक गुण करके सहित हैं। ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज आपकी ( दिवस सम्बन्धी ) अविनय आशातना की हो तो वारम्वार हे उपाध्यायजी महाराज ! मेरा अपराध क्षमा करिये, हाथ जोड़, मान मोड़, शीष नमा कर १००८ बार नमस्कार करता हूं।

" तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं वंदामि नमं-सामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि "

यावत् भव भव आपका शरण होओ ॥

पांचवे पद ' नमो लोए सव्वसाहूणं ' कहिये अढाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र रूप लोक के विषे सर्व साधुजी जघन्य दो हजार करोड़, उत्कृष्ट नव हजार करोड़ जयवन्ता विचरें, पांच महाव्रत पालें, पांच इन्द्रिय जीतें, चार कषाय टालें, भाव सच्चे, जोग सच्चे करण सच्चे, क्षमावन्त, वैराग्यवन्त, मनसमाधारणीया, वयसमा- ..., कायसमाधारणीया, नाणसम्पन्ना, दंसणसम्पन्ना, चारि-

रासम्पन्ना, वेदनीयसमा अहियासनीया, मरणान्तिकसमा अहियासनीया, ऐसे सत्ताईस गुण करके सहित, पांच आचार पालें, छह काय की रक्षा करें, सात कुव्यसन, आठ मद छोड़ें, नव वाड़ सहित ब्रह्मचर्य पालें, दश प्रकार यति धर्म धारें, बारह भेदे तपस्या करें, सत्रह भेदे संयम पालें, अठारह पाप को त्यागें, बाईस परिषह जीतें, तीस महामोहनीय कर्म निवारें, तेतीस आशातना टालें, बयालीस दोष टाल के आहार पानी लेवें, सैंतालीस दोष टाल के भोगें, बावन अनाचार टालें, तेड़िया (बुलाया) आवे नहीं, नोतिया जीमे नहीं, सचित के त्यागी, अचित के भोगी, लोच करें, खुले पैर चालें, इत्यादि कायक्लेश करें, और मोह ममता रहित हैं।

॥ सवैया ॥

आदरी संयम भार, करणि करे अपार, समिति गुपति धार, विकथा निवारी है। जयणा करें छः काय, सावद्य न बोलें वाय, बुझाय कषाय लाय, किरिया भंडारी है। ज्ञान भणें आठूं याम, लेवें भगवत नाम, धरम को करें काम, ममता कूं मारी है। कहत हैं तिलोक रिख, करमों को टालें बिख, ऐसे मुनिराज ताकुं वन्दना हमारी है।

ऐसे मुनिराज महाराज आप की (दिवस सम्बन्धी) अविनय अशातना की हो तो हे मुनिराज मेरा अपराध क्षमा

हाथ जोड़, मान मोड़, शीष नमा कर १००८ बार नमस्कार करता हूँ।

" तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं वन्दामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि "।

सदा काल आपका शरण होओ।⊛

॥ दोहा ॥

अनंत चौवीसी जिन नमूं, सिद्ध अनन्ता कोड़।
केवल ज्ञानी गणधरों, वन्दूं वे कर जोड़॥
दोय क्रोड़ केवलधरा, विहरमान जिन बीस।
सहस्र युगल कोड़ी नमूं, साधु वन्दूं निशदीस॥
धन साधु धन साधवी, धन धन है जिन धर्म।
ये समर्या पातक झड़ें, टूटे आठों कर्म॥

अढाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में मनुष्य श्रावक श्राविका दान देवें, शील पालें, तपस्या करें, शुद्ध भावना भावें, संवर करें, सामायिक करें, पोषध करें, प्रतिक्रमण करें, तीन मनोरथ चिंतवें, चौदह नियम चितारें, जीवादिक नव पदार्थ जानें, श्रावक के इक्कीस गुण करके युक्त एक व्रतधारी, जाव बारह व्रतधारी भगवंत की आज्ञा

⊛ इसके बाद कोई कोई जगह एक वन्दना पाँचों पद की शामिल जाती है। इसके बाद धर्माचार्यजी की जो ऊपर आचुकी है।

में विचरें ऐसे बड़ों से हाथ जोड़कर पैर पड़के क्षमा मांगता हूं, आप क्षमा करें आप क्षमा करने योग्य हैं, और छोटों से समुचै खमाता हूँ ।

## ॥ चौरासी लाख जीवाजोंणी (जीवयोनि) का पाठ ॥

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अपकाय, सात लाख तेउ-काय, सात लाख वाउकाय, दश लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय दो लाख चउरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य । ऐसे चारगति में चौरासी लाख जीवाजोणी में सूक्ष्म बादर पर्याप्त अप-र्याप्त हालते चालते जीवों को उठते बैठते जानते अजानते किसी जीव को हनन किया हो, कराया हो, हनता प्रति अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामणा उपजाई हो, मन, वचन, काया, करके अठारह, लाख चौबीस हजार एक सौ बीस (१८२४१२०) प्रकारे *तस्स

* जीवतत्त्व के ५६३ भेदों को अभिहयादि दशों के साथ गुणा-कार करने से ५६३० भेद होते हैं। फिर इनको राग और द्वेष के साथ द्विगुणाकार करने से ११२६० भेद बनते हैं। फिर इन्हींको मन वचन काया के साथ त्रिगुणा करने से ३३७८० भेद होते हैं, अपितु इनको ही तीन करणों के साथ संयोजन करने से १०१३४० भेद बन जाते हैं. अपिन इनको भी फिर तीन य [illegible] के साथ गुणकार करने से ३०४०२० आते हैं । [illegible] सिद्ध, साधु, देव, गुरु और

मिच्छा मि दुक्कडं । इनकी कुछ कोटि एक क्रोड़ साढे सत्याणं लाख जीवायोनि की विराधना हुई हो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

## ॥ खामेमि सव्वे जीवा का पाठ ॥

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे,
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ ।
एवमहं आलोइय, निंदिय गरहिय दुगंछिउं सम्मं ।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥

देवसिय पायच्छित्त विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं

( मैं दिवस सम्बन्धी प्रायश्चित्त की शुद्धि के लिए कायोत्सर्ग करता हूँ )

## ॥ समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ ॥

गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं, नमुक्कारसहियं पोरिसियं साड्ढपोरिसियं, ( यानी अपनी इच्छा अनुसार ) तिविहंपि चउविहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं, महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं ❀वोसिरामि ।

---

प्रकार छ से गुणाकार करने पर १८२४१२० भेद बनते हैं अर्थात् इस प्रकार से मैं मिच्छा मि दुक्कडं देता हूं और फिर पाप कर्म न करनेकी इच्छा करता हूं। कुल कोटि का वर्णन पहले भागमें आचुका है।

❀ स्वयं पच्चक्खाण करना हो तब 'वोसिरामि' ऐसा बोले और दूसरे को पच्चक्खाण कराना हो तो 'वोसिरे' ऐसा बोले।

## दोहा

आगे आगे दव चले, पीछा हरिया होय ।
बलिहारी उस वृक्ष की, जड़ काट्यां फल होय ॥

शम संवेग निर्वेद अनुकम्पा आस्था देव अरिहंत, गुरु निर्ग्रन्थ, धर्म केवली भाषित दयामय, और सच्चे की सद्दहणा झूठे का बार बार मिच्छा मि दुक्कडं ॥
मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अविरति का प्रतिक्रमण, प्रमाद का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण, अशुभ योग का प्रतिक्रमण, इन पाँच प्रतिक्रमणों में से किसी का प्रतिक्रमण न किया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

गये काल का प्रतिक्रमण, वर्त्तमान काल का संवर, भविष्य (आवते) काल का पच्चक्खाण में कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

### ॥ प्रतिक्रमण करने की विधि ॥

निरवद्य स्थान में शुद्धतापूर्वक एक आसन पर बैठ कर तीनवार तिक्खुत्तो के पाठ से श्री शासनपति को या वर्त्तमान में अपने गुरु महाराज को खड़े हो वंदना करके चउवीसत्थव की आज्ञा लेकर चउवीसत्थव करें। चउवीसत्थव मे इरियावहियाए का पाठ १ तस्स उत्तरी का पाठ १ कहके काउस्सग्ग करें। काउस्सग्ग में दो लोगस्स का ध्यान करें, मन में १ नवकार

नोट—सामायिक की विधि 'सामायिक सूत्र' पुस्तक में जान लेवें।

मंत्र, बोलके काउस्सग्ग करें, फिर प्रगट चार ध्यान का पाठ (ध्यान में मन वचन काया चलित हुए हों, आर्तध्यान रौद्र ध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान शुक्लध्यान न ध्याया हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ) बोलकर १ लोगस्स का पाठ बोल के दो वक्त नमोत्थुणं का पाठ डावा गोडा ऊंचा रखके बोलें। पीछे श्रीमहावीर स्वामी की तथा गुरु की देवसिय प्रतिक्रमण ठाने की आज्ञा लेवें। बाद इच्छामि णं भंते का पाठ बोलें पीछे नवकार मंत्र का उचारण करें, फिर तिक्खुत्तो का पाठ कहकर प्रथम आवश्यक की आज्ञा मांगें प्रथम आवश्यक में करेमि भंते का पाठ बोलकर पीछे " इच्छामि ठामि ' का पाठ कहें, पीछे तस्सउत्तरी का पाठ उचारण करके काउस्सग्ग करें काउस्सग्ग में १४ ज्ञान के अतिचार का, ५ सम्यक्त्व का, ६० बारह व्रतों का, १२ कर्मादान का, ५ संलेखणा का, एवं ९९ अतिचारों का, अठारह पाप स्थानकों का, इच्छामि ठामि का और नवकार मंत्र का पाठ चिन्तवन करें काउस्सग्ग पालें, काउस्सग्ग में प्रत्येक पाठ को समाप्ति में मिच्छा मि दुक्कडं के बदले 'आलोउं' चिंतवें। काउस्सग्ग पालते समय "नमो अरिहंताणं" यह शब्द प्रगट कह कर आर्तध्यान-रौद्रध्यान आदि बोलके पहला आवश्यक समाप्त करें। बाद तिक्खुत्तो के पाठ से दूसरे आवश्यक की आज्ञा मांगें।

दूसरे आवश्यक में एक लोगस्स का पाठ कह के सामायिक चउवीसत्थव ये दो आवश्यक पूरे हुए। बाद तिक्खुत्तो के पाठ से तीसरे आवश्यक की आज्ञा मांगें, तीसरे आवश्यक में इच्छामि खमासमणो का पाठ दो वक्त बोलें।

## खमासमणा की विधि

प्रथम जहां निसिहियाए शब्द आवे तब दोनों गोड़े खड़े करके दोनों हाथ जोड़कर बैठें तथा ६ आवर्तन करें सो इस प्रकार-प्रथम 'अहो' 'कायं काय' यह शब्द उचारते ३ आवर्तन होते हैं सो कहते हैं-दोनों

हाथ लंबे कर हाथ की दश अंगुलियां भूमि पर लगा के तथा गुरुचरण स्पर्श करके मुँह से "अ" अक्षर नीचे स्वर से कहें, फिर ऐसे ही दश अंगुलियां अपने मस्तक पर लगा के "हो" अक्षर ऊँचे स्वर से कहें, ये दोनों अक्षर कहने से पहिला आवर्तन होता है। इस प्रकार "का" और "यं" ये दो अक्षर उचारते दूसरा आवर्तन हुआ। इस तरह "का" और "य" यह दो अक्षर कहने से तीसरा आवर्तन हुआ। फिर 'जत्ता भे जवणिज्जंच भे' शब्द उचारते ३ आवर्तन होते हैं। वे इस तरह-प्रथम "ज" अक्षर मंद स्वर से "त्ता" अक्षर मध्यम स्वर से और "भे" अक्षर उच्च स्वर से, इस तरह से ऊपर मुजब बोलें। ये तीन अक्षर बोलने से प्रथम आवर्तन हुआ। और इसी प्रकार "ज, व, णि" ये तीन अक्षर त्रिविध स्वर से ऊपर मुजब कहने से दूसरा आवर्तन हुआ। तथा इसी प्रकार "ज्जं, च, भे" ये तीन अक्षर त्रिविध स्वर से पूर्ववत बोलने से तीसरा आवर्तन हुआ। एवं ३ + ३ = ६ आवर्तन १ पाठ में बोलें और जहां "तित्तीसन्नयराए" शब्द आवे तब खड़े होकर पाठ समाप्त करें। इसी मुताबिक दूसरी बार खमासमणो का पाठ बोलें, उसमें भी ६ आवर्तन पूर्ववत् कहें। दूसरे खमासमणो में "आवसियाए पडिक्कमामि" ये १० अक्षर न कहें। इस प्रकार दो खमासमणो देकर सामायिक एक, चउवींसत्थव दो, वंदना तीन ये तीन आवश्यक पूरे हुए। अब चौथा आवश्यक की तिक्खुत्तो के पाठ से आज्ञा लें।

पीछे खड़े हो कर ९९ अतिचारों का पाठ जो काउस्सग्ग में चिंतवन किया था वह सब यहां प्रकट कहें। फरक इतना ही है कि काउस्सग्ग में प्रत्येक पाठ की समाप्ति में "मिच्छामि दुक्कडं" की जगह 'आलोउं' कहा था सो आलोउं के बदले प्रकट "मिच्छा मि दुक्कडं" कहें। बाद में श्रावक

नोट—खमासमणा में जहां "तित्तीसन्नयराए" शब्द आवे उस वक्त पहिले दफे खड़े होवें दूसरी दफे नहीं।

सूत्र पढ़ने की आज्ञा माँगें। पीछे "तस्स समस्स" का पाठ उच्चारण करें। फिर नीचे बैठकर दाहिना (जीवणा) गोड़ा ऊंचा रखकर दोनों हाथ की दसों ही अंगुलियाँ मिलाकर गोड़े के ऊपर रक्खें। पीछे नवकार मंत्र कहके "करेमि भंते" का पाठ पढ़कर "चत्तारि मंगलं" का पाठ बोलें। बाद 'इच्छामि ठामि' का पाठ तथा "इरियावहियाए" का पाठ कहें। बाद "आगमे तिविहे" का पाठ पढ़कर दंसणसमकित तथा बारह व्रत अतिचार कहें। फिर पलांठि लगा कर दोनों हाथ जोड़ मस्तक के लगा कर संलेखणा का पाठ पढ़ें। फिर ऐसे समकित पूर्वक बारह व्रत संलेखणा सहित, इनके विषय जो कोई अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार जानते अजानते, मन, वचन, काय करके सेवन किया हो, सेवन कराया हो सेवन करते हुए को अनुमोदन किया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साख से "इच्छा मि दुक्कडं" कहके अठारह पापस्थानक और "इच्छामि ठामि" का पाठ बोलें। फिर खड़े होकर हाथ जोड़ के "तस्स सम्मस्स" का पाठ उच्चारण करें, बाद दो खमासमणा पूर्ववत् विधि सहित दे करके भाववंदना करने की आज्ञा लें। फिर दोनों गोड़ा नमाय के गोड़ा ऊपर दोनों हाथ जोड़ के मस्तक को नीचे नमाय कर एक नवकार मंत्र कह के पांच पदों की वंदना करें। फिर सीधे बैठ के अनंत चौबीसी कह के अढाई द्वीप का पाठ बोलकर चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ उचार के "खामेमि सव्वे जीवा" का पाठ बोलकर अठारह पापस्थान कहें। फिर सामायिक एक, चउवीसत्थ दो, वंदना तीन, प्रतिक्रमण चार, ये चार आवश्यक पूरे हुए। बाद खड़े होके पांचवां आवश्यक की तिक्खुत्तो के पाठ से आज्ञा लेकर "देवसियणाणदंसणचरित्त चरित्ताचरित्तअइयार-पायच्छित्तविसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं" बोलकर बाद नवकार मंत्र, करेमि भंते का पाठ, इच्छामि ठामि का पाठ, और तस्स उत्तरी का पाठ कह के काउस्सग्ग करें। काउस्सग्ग में देवसिक राइसिक प्रतिक्रमण में ४ लोगस्स, पाक्षिक प्रतिक्रमण में ८ लोगस्स, चौमासी प्रतिक्रमण में १२

लोगस्स, संवत्सरी प्रतिक्रमण में २० लोगस्स का काउस्सग्ग करें। फिर काउस्सग्ग पारें। आर्तध्यान रौद्रध्यान आदि चार ध्यान का पाठ प्रगट बोलके एक लोगस्स कहें। बाद दो खमासमण विधिसहित देवें। सामायिक एक, चउवीसत्थव दो, वंदना तीन, प्रतिक्रमण चार, काउस्सग्ग पांच, ये पांच आवश्यक पूरे हुए। बाद छठे आवश्यक का कामी धन्य श्रीमहावीर स्वामी अन्तरजामी ऐसे कहें। छठे आवश्यक में खड़ा हो साधुजी महाराज हो तो उनसे अपनी शक्ति अनुसार पचक्खाण करें, तथा वे न हों तो बड़े श्रावक से पचक्खाण मांगे और बड़े श्रावक न हों तो स्वयंमेव 'समुच्चय पचक्खाण' के पाठ से पचक्खाण करें। फिर सामायिक एक, चउवीसत्थव दो, वंदना तीन, प्रतिक्रमण चार, कायोत्सर्ग पांच, पचक्खाण छ, ये छहों आवश्यक समाप्त हुए।

ऐसे कह कर इन छह आवश्यक में जानते अजानते जो कोई अतिचार दोष लगा हो तथा पाठ उचारते काना मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, अधिक न्यून आगे पीछे कहा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण १, अव्रत का प्रतिक्रमण २, कषाय का प्रतिक्रमण ३, प्रमाद का प्रतिक्रमण ४, अशुभ योग का प्रतिक्रमण ५, ये पांच प्रतिक्रमण मांहिला कोई भी प्रतिक्रमण न किया हो हालते चालते उठते बैठते पढते गुणते मन वचन काया करके, ज्ञान दर्शन चारित्र तप सम्बन्धी जानते अजानते द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, आश्रयी कोई भी प्रकार से पाप दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं। गये काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का संवर-सामायिक, आवता काल का पचक्खाण, उन में जो कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं। बाद आगे २ दयबल के दोहा से अन्त के मिच्छामि दुक्कडं तक कहें।

फिर नीचे बैठकर डाबा गोडा ऊंचा रख के दोनों हाथ मस्तक पर रखकर दो वक्त नमोत्थुणं पूर्वोक्त विधि से बोलके जो साधु मुनिराज

विराजते हों, उनको तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार विधिसहित वंदना नमस्कार करके, यदि कोई साधु मुनिराज नहीं विराजते हों तो पूर्व तथा उत्तर दिशि की तरफ मुंह करके श्री महावीर स्वामी को, तथा धर्माचार्य (धर्मगुरु) को वंदना नमस्कार करके, सर्व स्वधर्मी भाइयों के साथ क्षमत क्षामणा अन्तःकरण से करें । बाद चौबीसी स्तवन उच्चारण करें । प्रतिक्रमण में जहां देवसिय शब्द आवे, वहां देवसिय प्रतिक्रमण में तो देवसिय सम्बंधी, राइय प्रतिक्रमण में राइय सम्बन्धी, पक्खीप्रतिक्रमण में पक्खीसम्बन्धी, चौमासी प्रतिक्रमण में चौमासी सम्बन्धी और संवत्सरी प्रतिक्रमण में संवत्सरी संबंधी कहें ।

॥ इति प्रतिक्रमणसूत्रं विधिसहितं समाप्तम् ॥

न्यूनाधिक आगे पीछे सूत्रविपरीत हो गया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

सूचना—प्रतिक्रमण जानकार से सीखें और पक्का कंठस्थ कर लेवें ।

तत्वं तु केवलिगम्यं,

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!



नोट—पुरुष 'करता हूं' कहे उस जगह स्त्री को 'करती हूं' ऐसा कहना चाहिये ।

# परमात्म द्वात्रिंशतिका

का

## हिन्दी पद्यानुवाद

( *हरिगीत छन्द* )

जिनदेव! मेरी आत्मा, धारण करे इस नेम को,
मैत्री[1] करे सब प्राणियों से, गुणिजनों से प्रेम को।
उन पर दया करती रहे, जो दुःख ग्राह[2] ग्रहीत[3] हैं,
उनसे उदासी हो रहे, जो धर्म के विपरीत हैं॥१॥

करके कृपा कुछ शक्ति ऐसी, दीजिये मुझ में प्रभो,
तलवार को ज्यों म्यान से, करते विलग[4] हैं हे विभो।
गत[5] दोष आत्मा शक्तिशाली, है मिली मम अंग सों,
उसको विलग उस भांति, करने के लिये ऋजु[6] ढंग से॥२॥

हे नाथ! मेरे चित्त में, समता सदा भरपूर हो,
सम्पूर्ण ममता की कुमति, मेरे हृदय से दूर हो।
वन में, भवन में, दुःख में, सुख में नहीं कुछ भेद हो,
अरि मित्र में मिलने बिछुड़ने में, न हर्ष न खेद हो॥३॥

---

१ मित्रता, २ मगर ३ पकड़े हुए, ४ अलग (जुदा) ५ शुद्ध, ६

अतिशय घनी तमराशि[1] को, दीपक हटाते हैं यथा,
दोनों कमल[2] पद आपके, अज्ञान तम हरते यथा।
प्रतिबिम्ब सम स्थिर रूप वे, मेरे हृदय में लीन हों,
मुनिनाथ! कीली[3] तुल्य वे, उन पर सदा आसीन[4] हों॥४॥

यदि एक इन्द्रिय आदि देई, घूमते फिरते मही[5],
जिनदेव! मेरी भूल से, पीड़ित हुए हों वे कहीं।
टुकड़े हुए हों, मल[6] गए हों, चोट खाये हों कभी,
तो नाथ वे दुष्टाचरण, मेरे बनें झूठे सभी॥५॥

मुक्ति के सन्मार्ग से, प्रतिकूल पथ[7] मैंने लिया,
पंचेन्द्रियों चारों कषायों, में स्वमन मैंने दिया।
इस हेतु शुद्ध चरित्र का, जो लोप[8] मुझ से हो गया,
दुष्कर्म वह मिथ्यात्व को, हो प्राप्त प्रभु! करिये मया॥६॥

चारों कषायों से वचन, मन काय से जो पाप हैं,
मुझ से हुआ है नाथ, जिस कारण हुआ भव ताप
अब मारता[9] हूँ मैं उसे, आलोचना निन्दादि से,
ज्यों सकल विष को वैद्यवर[10], हैं मारते मन्त्रादि से॥७॥

जिनदेव! शुद्ध चरित्र का, मुझ से अतिक्रम जो हुआ,
अज्ञान और प्रमाद से, व्रत का व्यतिक्रम जो हुआ।

---

१ अन्धकार, २ चरणकमल, ३ धामी की तरह, ४ जम कर बैठा हुआ, ५ पृथ्वी, ६ मसले गये हों, ७ मार्ग, ८ भूल जाना, ९ खपाता हूँ, १० श्रेष्ठ वैद्य।

अतिचार और अनाचरण, जो जो हुए मुझ से प्रभो,
सबकी मलिनता मेटने को, प्रतिक्रमण करता विभो ॥८॥

मन की विमलता[1] नष्ट होने को, अतिक्रम है कहा,
और शीलचर्या[2] के विलंघन,[3] को व्यतिक्रम है कहा।
हे नाथ विषयों में लिपटने को, कहा अतिचार है,
आसक्त अतिशय विषय में, रहना महाऽनाचार है ॥९॥

यदि अर्थ मात्रा वाक्य में, पद में पड़ी त्रुटि कहीं,
तो भूल से ही वह हुई, मैंने उसे जाना नहीं।
जिनदेव वाणी! तो क्षमा, उसको तुरत कर दीजिये,
मेरे हृदय में देवि! केवल[4] ज्ञान को भर दीजिये ॥१०॥

हे देवि! तेरी वन्दना मैं कर रहा हूँ इसलिये,
चिन्तामणी प्रभ है सभी, वरदान देने के लिये।
परिणाम शुद्धि समाधि मुझ में, बोधि[5] का संचार हो,
हो प्राप्ति स्वात्मा की तथा, शिवसौख्य की भव पार हो॥११॥

मुनि नायकों[6] के छन्द जिसको, स्मरण करते हैं सदा,
जिसका सभी नर अमरपति[7] भी, स्तवन करते हैं सदा।
सच्छास्त्र वेद पुराण, जिसको सर्वदा हैं गा रहे,
वह देव का भी देव बस, मेरे हृदय में आ रहे ॥१२॥

---

१ निर्मलता, २ व्रतनियम, ३ उल्लंघन, ४ सिर्फ, ५ सम्यक्त्व
६ आचार्य, ७

जो अन्त रहित सुबोध दर्शन, और सौख्य स्वरूप हैं,
जो सब विकारों से रहित, जिससे अलग भव कूप हैं।
मिलता विनाश समाधि जो, परमात्म जिसका नाम है,
देवेश वह उर आवसे, मेरा खुला हृद्धाम[१] है ॥१३॥

जो काट देता है जगत के, दुःख निर्मित[२] जाल को,
जो देख लेता है जगत की, भीतरी भी चाल को।
योगी जिसे हैं देख सकते, अन्तरात्मा हो स्वयम्,
देवेश! वह मेरे हृदयपुर, का निवासी हो स्वयम् ॥१४॥

कैवल्य के सन्मार्ग को, दिखला रहा है जो हमें,
जो जन्म के या मरण के, पड़ता नहीं सन्दोह[३] में।
अशरीर हो त्रैलोक्यदर्शी, दूर है कु कलंक से,
देवेश वह आकर लगे, मेरे हृदय के अंक से ॥१५॥

निभा लिया है निखिल तनुधारी, निवहने[४] ही जिसे,
रागादि दोष का व्यूह[५] भी, छू तक नहीं सकता जिसे।
जो ज्ञानमय है, नित्य है, सर्वेन्द्रियों से हीन है,
जिनदेव! देवेश्वर वही, मेरे हृदय में लीन है ॥१६॥

संसार की सब वस्तुओं में, ज्ञान जिसका व्याप्त[७] है,
जो कर्म बन्धन हीन, शुद्ध विशुद्ध सिद्धि प्राप्त है।

---

१ हृदय-मंदिर; २ बने हुए, ३ समुद्र, ४ समस्त, ५ झगड़ा, ६ रमण हुवा, ७ फैला हुवा।

जो ध्यान करने से मिटा देता सकल कुविचार को,
देवेश! वह शोभित करे, मेरे हृदय आगार[1] को ॥१७॥

तमसंघ[2] जैसे सूर्य किरणों को, न छू सकता कहीं,
उस भांति कर्म, कलंक, दोषाकर[3] जिसे छूता नहीं।
जो है निरंजन वस्त्वपेक्षा, नित्य भी है एक है,
उस आप्त प्रभु की शरण में हूँ, मात्र जो कि अनेक है ॥१८॥

यह दिवसनायक[4] लोक का, जिसमें कभी रहता नहीं,
त्रैलोक्य भासक[5] ज्ञान रवि, पर है वहाँ रहता सही।
जो देव स्वात्मा में सदा, स्थिर रूपता को प्राप्त है,
मैं हूँ उसी की शरण में, जो देववर है आप्त है ॥१९॥

अवलोकने पर ज्ञान में, जिसके सकल संसार ही,
है स्पष्ट दिखता एक से हैं, दूसरा मिल कर नहीं।
जो शुद्ध शिव है शांत भी है, नित्यता को प्राप्त है,
उसकी शरण को प्राप्त हूँ, जो देववर है आप्त है ॥२०॥

वृक्षावली जैसे अनल[6] की, लपट से रहती नहीं,
त्यों शोक मन्मथ[7] मान को, रहने दिया जिसने नहीं।
भय, मोह, नींद, विषाद[8], चिन्ता भी न जिसको व्याप्त है,
उसकी शरण में हूँ गिरा, जो देववर है आप्त है ॥२१॥

---

१ घर, २ अन्धकार पुञ्ज, ३ दोषों का भण्डार, ४ सूर्य ५ उद्योत-कारक, ६ वायु, ... ७, ८ दुःख।

विधिवत् शुभासन घास का, या भूमि का बनता नहीं,
चौकी शिला को ही शुभासन, मानती सुधता[1] नहीं।
जिससे कषायेंन्द्रियां, खटपट मचाती हैं नहीं,
आसन सुधीजन के लिये है, आत्मा निर्मल वही ॥२२॥

हे भद्र! आसन लोक-पूजा, संघ की संगति तथा,
ये सब समाधि के न साधन, वास्तविक में है प्रथा।
सम्पूर्ण बाहर वासना को, इसलिए तू छोड़ दे,
अध्यात्म में तू हर घड़ी, हो कर निरत[2] रति जोड़ दे ॥२३॥

जो बाहरी हैं वस्तुएँ वे, हैं नहीं मेरी कहीं,
उस भांति हो सकता कहीं, उनका कभी मैं भी नहीं।
यों समझ बाह्याडम्बरों को, छोड़ निश्चत रूप से,
हे भद्र! हो जा स्वस्थ[3] तू, बच जायगा भव कूप से ॥२४॥

निज को निजात्मा मध्य में ही, सम्यगवलोकन करे,
तू दर्शन ज्ञानमय[4] है, शुद्ध से भी है परे।
एकाग्र जिसका चित्त है, तू सत्य इसको मानना,
चाहे कहीं भी हो समाधि, प्राप्त उसको जानना ॥२५॥

मेरी अकेली आत्मा, परिवर्तनों से हीन है,
अतिशय विनिर्मल[5] है, सदा सद्ज्ञान में ही लीन है।

---

१ बुद्धि, २ मोह रहित आनन्द, ३ विकल्प चिन्ता रहित, ४ विज्ञान-
५ शुद्ध।

जो अन्य सब हैं वस्तुएँ वो, ऊपरी ही हैं सभी,
निज कर्म से उत्पन्न हैं, अविनाशिता क्यों हो कभी ॥२६॥

हैं एकता जब देह के भी, साथ में जिसकी नहीं,
पुत्रादिकों के साथ उसका, ऐक्य फिर क्यों हो कहीं।
जब अंग भर से मनुज के, चमड़ा अलग हो जायगा,
तो रोंगटों[1] का छिद्रगण, कैसे नहीं खो जायगा ॥२७॥

संसार रूपी गहन[2] में है, जीव बहु दुःख भोगता,
वह बाहरी सब वस्तुओं के, साथ कर संयोगिता।
यदि मुक्ति की है चाह तो, फिर जीवगण सुन लीजिये,
मन से वचन से काय से, उसको अलग कर दीजिये ॥२८॥

देही विकल्पित[3] जाल को, तू दूर करदे शीघ्र ही,
संसार वन में डालने का, मुख्य कारण है यही।
तू सर्वदा सबसे अलग निज आत्मा को देखना,
परमात्मा के तत्त्व में तू, लीन निज को देखना ॥२९॥

पहले समय में आत्मा ने, कर्म हैं जैसे किये,
वैसे शुभाशुभ फल यहाँ पर, साम्प्रतिक[4] उसने लिये।
यदि दूसरे के कर्म का, फल जीव को हो जाय तो,
हे जीवगण, फिर सफलता, निज कर्म की खो जाय तो ॥३०॥

अपने उपार्जित कर्म फल को, जीव पाते हैं सभी,

---

१ रूँवावली, २, ३ मानी हुई, ४ वर्तमान में।

उसके सिवा कोई किसी को, कुछ नहीं देता कभी।
ऐसा समझना चाहिये, एकाग्र मन हो कर सदा,
दाता अपर[1] है भोग का, इस बुद्धि को खोकर सदा ॥३१॥
सबसे अलग परमात्मा है, अमित गति से वन्द्य है,
है जीवगण वह सर्वदा, सब भाँति हो अनवद्य[2] है।
मन से उसी परमात्मा को, ध्यान में जो लायगा,
वह श्रेष्ठ लक्ष्मी के निकेतन,[3] मुक्ति पद को पायगा ॥३२॥

॥ चौपाई ॥

पढ़ कर इन द्वात्रिंशपद्य को, लखता[4] जो परमात्मवन्द्य को।
वह अनन्य मन हो जाता है, मोक्ष निकेतन को पाता है ॥३३॥

इत्यलम्

इस परमात्म प्रार्थना की मूल रचना संस्कृत पद्य में श्री अमितगति नामक आचार्य ने की है, और हिन्दी में पद्यानुवाद श्री रामचरित उपाध्याय ने की है जो हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में हैं इस कविता के एक एक पद में परमात्म स्तुति, आत्मबोध और वस्तु स्वरूप की महत्ता झलक रही है। पाठक! इसे शांतिपूर्वक एकाग्र चित्त रख कर पठन करेंगे तो अनुपम आनन्द प्राप्त होगा। इत्यलम्।

१ दूसरा, २ पाप रहित, ३ निवासस्थान, ४ देखना।

# पचांस बोल का थोकड़ा

( प्रथम भाग से आगे )

१२ बारहवें बोले पांच इन्द्रियों के तेवीस विषय और २४० विकार—श्रोत्रेन्द्रिय के ३ विषय–१ जीव शब्द, २ अजीवशब्द, ३ मिश्रशब्द । चक्षुइन्द्रिय के ५ विषय–१ कालो, २ नीलो, ३ रातो, ४ पीलो, ५ धोलो । घ्राणेन्द्रिय के २ विषय–१ सुरभिगन्ध, २ दुरभिगन्ध । रसेन्द्रिय के ५ विषय–१ तीखो, २ कड़वो, ३ कषायलो, ४ खाटो, ५ मीठो । स्पर्शेन्द्रिय के ८ विषय–१ खरदरो, २ सुंहालो, ३ भारी, ४ हलको, ५ ठंडो, ६ ऊनो, ७ लूखो, ८ चोपड्यो ।

विवेचन—इन्द्रियों के विषय किसे कहते हैं? जिन शब्दादिक को इन्द्रियें ग्रहण करती हैं, उन्हें इन्द्रियों के विषय कहते हैं, और जिन विषयों पर अपने परिणाम में विकृति आवे, राग द्वेष उत्पन्न हो उसे विकार कहते हैं ।

ममत्व नहीं करे। ११ श्रोत्रेन्द्रिय वश करे। १२ चक्षुरेन्द्रिय वश करे। १३ घ्राणेन्द्रिय वश करे। १४ रसेन्द्रिय वश करे। १५ स्पर्शेन्द्रिय वश करे। १६ मन वश करे। १७ वचन वश करे। १८ काया वश करे। १९ भंडोपकरण यत्न सहित लेवे रखे। २० सुई कुसग्ग मात्र यत्न सहित लेवे रखे ।

७ निर्जरा तत्व के १२ भेद—१ अनशन, २ ऊणोदरी, ३ भिक्षाचर्या, ४ रसपरित्याग, ५ कायक्लेश, ६ प्रतिसंलीनता, ७ प्रायश्चित्त, ८ विनय, ९ वैयावच्च ( वैयावृत्त्य ), १० स्वाध्याय, ११ ध्यान, १२ विउसग्ग ( व्युत्सर्ग ) अर्थात काउसग्ग ।

८ बंध के ४ भेद—१ प्रकृतिबंध—आठ कर्म का स्वभाव । २ स्थितिबंध—आठ कर्म की स्थिति ( काल ) का मान प्रमाण । ३ अनुभागबंध—आठ कर्म का तीव्र मन्दादि रस । ४ प्रदेशबंध—कर्म पुद्गलों के दल का आत्मा के साथ बँधना ।

९ मोक्ष तत्व के ४ भेद—मोक्षगति चार बोलों से प्राप्त होवे—१ सम्यक्ज्ञान, २ सम्यक् दर्शन, ३ सम्यक् चारित्र, और ४ सम्यक् तप ।

विवेचन—१ जीवतत्व किसे कहते हैं ? जीव चेतनालक्षण उपयोग लक्षण सुख दुःख का वेदक, पर्याप्ति प्राण का धर्त्ता, आठ कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता, सदाकाल शाश्वत रहे कदेही विनसे नहीं, और असंख्याता प्रदेशी हो उसको जीव-तत्व कहते हैं।

२ अजीव किस को कहते हैं ? अजीव चेतना रहित, सुख दुःख को वेदे नहीं, पर्याप्त, प्राण, जोग, उपयोग और आठ कर्मों से रहित एवं जडलक्षण, जडस्वरूप हो उसे अजीव कहते हैं।

३ पुण्य किसे कहते हैं ? पुण्य जीव को पवित्र करे ऊँचा उठावे, पुण्य के फल मीठे-सुखकारी, पुण्य बांधना कठिन भोगवना सरल, पुण्य की ४२ प्रकृति भोगवने की हैं।

४ पाप किस को कहते हैं ? जो आत्मा को मलीन करे तथा जो बांधतां सोहिलो, भोगवतां दोहिलो, अशुभ योग से बंधे, पाप अशुभ प्रकृति रूप है, जिसका फल कडुआ जो आत्मा को मैला करे उसे पाप कहते हैं। पाप की ८२ प्रकृति भोगवने में आती है।

५ आस्रव किस को कहते हैं ? जिसके द्वारा आत्मा में कर्म आवे तलाव. कर्म रूपीयो पाणी

पांच आस्रवद्वाररूप नाला (मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, अशुभ जोग ) करी भरे उसको आस्रवतत्व कहते हैं।

६ संवर किस को कहते हैं ? आस्रव को रोके उस को संवर कहते हैं। यथा जीवरूपीयो तलाव, कर्म रूपीयो पाणी, आश्रव रूप नालो, संवररूपी पाल करके आते हुए कर्मों को रोके उस को संवर तत्व कहते हैं। इसके सामान्य प्रकार से २० भेद कहे हैं और विशेष प्रकार से ५७ भेद होते हैं—५ समिति, ३ गुप्ति, २२ परिषह, १० प्रकार यतिधर्म, १२ भावना, ५ चारित्र, ये ५७ हुये।

७ निर्जरा तत्व किस को कहते हैं ? आत्मा का कर्म-वर्गणा से एक देशतः दूर होना, तथा जीवरूपी कपड़ा, कर्मरूपी मैल, ज्ञानरूपी पाणी, तप संयम रूपी साजी साबू, उससे धोय के मैल को निकाले उसको निर्जरातत्व कहते हैं। अथवा नीर ( पाणी ) की तरह थोड़ा २ झरे उसे निर्जरा तत्व कहते हैं।

८ बंध किसको कहते हैं ? जीव कषाय वश होकर कर्म पुद्गलों को ग्रहण करे तथा आत्मा के प्रदेश और कर्म के पुद्गल एक साथ मिले जैसे खीर नीर की तरह व लोह पिण्ड ( गोला ) अग्नि के माफिक लोलीभूत होकर बंधे उसको बन्ध कहते हैं। इस चार प्रकार के बन्ध का स्वरूप मोदक

के दृष्टान्त से जानना। जैसे—१ कोई मोदक बहुत प्रकार के द्रव्य के संयोग से उत्पन्न हुआ वायु, पित्त, कफ को जिस स्वरूप करके हणे, उसको स्वभाव कहिये। २ वोही लाडू पक्ष, मास, दो मास तक उसी स्वरूप में रहे उसको स्थितिबन्ध कहिये। ३ वोही लाडू तीखो कड़वो, कषायलो, खाटो, मीठो होवे उसको रसबन्ध कहिये। ४ वोही लाडू थोड़ा माखर (दल) इसको बांध्यो हुवो छोटो होय ज्यादा माखर कोबांध्यो हुवो मोटो होय उसकोप्र देशबन्ध कहिये।

चार प्रकार के बंध का कारण क्या है? प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध योग से होते हैं। स्थितिबन्ध और अनुभाग बन्ध कषाय से होते हैं, ऐसे जानकर बन्ध को तोड़ना चाहिये, बन्ध को तोड़ने से निराबाध परम सुख मिलता है।

९ मोक्ष किस को कहते हैं? आत्मा का कर्म रूपी फांसी से सर्वथा छूटना तथा सम्पूर्ण आत्मा के प्रदेशों से सब कर्मों का दूर होना, बन्धन से छूटना, उसको मोक्ष कहते हैं।

१५ पन्द्रहवें बोले आत्मा ८—१ द्रव्य आत्मा, २ कषाय आत्मा, ३ योग आत्मा, ४ उपयोग आत्मा, ५ ज्ञान आत्मा, ६ दर्शन आत्मा, ७ चारित्र आत्मा, ८ वीर्य आत्मा।

विवेचन—आत्मा [illegible] कहते हैं? ज्ञानादिपर्यायों को हानि

बुद्धि से आत्मा जिस समय जिस पर्याय का
ले उसी को मुख्य करके भेद किये हैं। जैसे कषाय में रमे
तब कषायात्मा, ज्ञान में रमे तब ज्ञानात्मा, चारित्र में रमे
तब चारित्रात्मा—इस तरह विकल्प कर देना।

१६ सोलहवें बोले दण्डक २४—सात नारकी का एक दण्डक। सात नारकी के नाम—घम्मा, वंसा, सीला, अंजणा, रिट्ठा, मघा और माघवई। इनके गोत्र—रत्न प्रभा, सर्करप्रभा, बालुप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, और तमतमःप्रभा। दश भवनपतियों के दश दण्डक, ११ उनकेनाम—१ असुर कुमार, २ नाग कुमार, ३ सुवर्ण कुमार, ४ विद्युतकुमार, ५ अग्नि कुमार, ६ द्वीप कुमार, ७ उदधि कुमार, ८ दिशा कुमार, ९ पवन कुमार, १० थणित कुमार। पांच स्थावरों के पांच दण्डक १६। तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक१९। तिर्यच पंचेन्द्रिय का एक दण्डक २०। मनुष्य का एक दण्डक २१। वाणव्यन्तर देवता का एक दण्डक२२। ज्योतिषी देवों का एक दण्डक२३। और वैमानिक देवता का एक दण्डक २४। एवं २४ दण्डक।

विवेचन—जीवों के स्वरूप को समझाने वाली वाक्य पद्धति को दण्डक कहते हैं अथवा जिन २ स्थानों में जाकर जीव

अपने पूर्वकृत्य शुभा शुभ फल पावे, दण्ड भोगे, उसे दण्डक कहते हैं।

१७ सतरहवें बोले लेश्या ६—१ कृष्ण लेश्या, २ नील लेश्या, ३ कापोत लेश्या, ४ तेजो लेश्या, ५ पद्म लेश्या, ६ शुक्ल लेश्या।

विवेचन—लेश्या किस को कहते हैं? जिस के द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त होता है तथा जो योग और कषाय की तरंग से उत्पन्न होते हुए मन के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते हैं अर्थात् परमार्थ से लेश्या कषाय स्वरूप ही है।

छः लेश्या के लक्षण—आम्र वृक्ष को फला हुआ देख कर छः पुरुषों को उसके फल खाने की इच्छा हुई। इसमें जो पहला कृष्ण लेश्या वाला था उसको मूल से वृक्ष को उखाड़ कर फल खाने की इच्छा हुई। दूसरा नील लेश्या वाला था उसको वृक्ष की बड़ी-बड़ी शाखाओं को तोड़ कर फल खाने की इच्छा हुई। तीसरा कापोत लेश्या वाला था उस को छोटी-छोटी शाखाओं को तोड़ कर फल खाने की इच्छा हुई। चौथा तेजो लेश्या वाला था उसको फल के गुच्छे तोड़ कर फल खाने की इच्छा हुई। पाँचवाँ पद्म लेश्या वाला था उसको पके हुए फल खाने की इच्छा हुई। छठा शुक्ल लेश्या वाला था उसे वृक्ष को कोई भी प्रकार का नुकसान

पहुँचाये बिना ही भूमि पर पड़े हुये फल खाने की इच्छा हुई। इस माफिक लेश्या के अनुसार जीवों का स्वभाव जान लेना।

१८ अठारहवें बोले दृष्टि ३—सम्यक् दृष्टि, मिथ्या दृष्टि, सम्यक्–मिथ्या ( मिश्र ) दृष्टि।

विवेचन—मोह कर्म के क्षयोपशम अनुसार तत्वविचारणा में जैसा दृष्टिकोण रहता है, उसे दृष्टि कहते हैं।

१९ उगणीसवें बोले ध्यान ४—आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान, और शुक्ल ध्यान।

विवेचन—१ ध्यान किसको कहते हैं ? एक वस्तु पर मन को स्थिर करना उसको ध्यान कहते हैं। वह ( ध्यान ) छद्मस्थों के अन्तर्मुहूर्त मात्र रहता है। वह चार प्रकार का होता है—

आर्तध्यान—अनिष्ट वस्तु का वियोग और इष्ट वस्तु का संयोग चिन्तवना।

रौद्रध्यान—हिंसादि दुष्ट आचरणों का चिन्तवना।

धर्मध्यान—निर्जरा के लिए शुभ आचरणादि का चिन्तवना तथा संसार की असारता चिन्तवना।

शुक्लध्यान—संसार, पुद्गल, कर्म और जीवादि के

स्वरूप-स्वभाव का विशुद्ध रीति से चिन्तवना।

बीसवें बोले षट् द्रव्य के ३० भेद—षट्द्रव्य के नाम-१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ कालद्रव्य, ५ जीवास्तिकाय, ६ पुद्गलास्तिकाय।

धर्मास्तिकाय को पांच बोलों से ओलखे

१ द्रव्य थकी—एक द्रव्य, २ क्षेत्र थकी-आखालोक प्रमाणे, ३ काल थकी- आदि अन्तरहित, ४ भाव थकी-वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं; अरूपी, अजीव शाश्वत, सर्वव्यापी और असंख्यात प्रदेशी है। ५ गुण थकी-चलण गुण, पाणी में मॉछला को दृष्टान्त, जैसे पाणी के आधार ( सहायता ) से मॉछला चाले, इसी तरह जीव और पुद्गल दोनों धर्मास्तिकाय के आधार ( सहायता ) से चाले।

अधर्मास्तिकाय को पांच बोलों से ओलखे

१ द्रव्य थकी—एक द्रव्य, २ क्षेत्र थकी आखा लोक प्रमाणे, ३ काल थकी—आदि अन्तरहित, ४ भाव थकी—वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी, अजीव, शाश्वत, सर्वव्यापी और असंख्यात प्रदेशी है। ५ गुणथकी स्थिर गुण, थाका पन्थी ने छाया को दृष्टान्त, जैसे थाका

२ अजीव राशि के ५६० भेद, जिसमें अजीव अरूपी के ३० और अजीव रूपी के ५३० ये कुल ५६० भेद।

अजीव अरूपी के ३० भेद इस प्रकार—( १ ) धर्मास्तिकाय के खंध ( सम्पूर्ण वस्तु ) देश ( दो तीन आदि भाग ) प्रदेश ( जिसका दूसरा भाग नहीं हो सके ) ये तीन। ( २ ) अधर्मास्तिकाय के खंध, देश, प्रदेश। ( ३ ) आकाशास्तिकाय के खंध, देश, प्रदेश। ( ४ ) कालद्रव्य का एक भेद = १०। धर्मास्तिकाय के पांच भेद—१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, ५ गुण। अधर्मास्तिकाय के पांच भेद—१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, ५ गुण। आकाशास्तिकाय के पांच भेद—१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, ५ गुण। काल द्रव्य के पांच भेद १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, ५ गुण। कुल ३० भेद।

अजीव रूपी के ५३० भेद इस प्रकार—

१०० संठाण ५—परिमंडल, वट्ट, तंस, चउरस, आयत। एक एक के भेद २०×५ = १००।

१०० वर्ण ५—कालो, नीलो, रातो, पीलो, धोलो। एक एक के भेद २०×५ = १००।

१०० रस ५—तीखो, कड़वो, कषायलो, खट्टो, मीठो। एक एक के भेद २०×५=१००।

४६ गन्ध २—सुगन्ध, दुर्गन्ध। एक एक के भेद २३×२=४६। १८४ स्पर्श ८—खरखरो, सुंहालो, भारी, हलको, शीत, उष्ण, चीकणो, लुखो। एक एक के भेद २३×८=१८४। कुल ५३० भेद।

विवेचन—राशि किसको कहते हैं? वस्तु के समूह को राशि कहते हैं।

२२ बाइसवें बोले श्रावकजी के बारह व्रत—

१ पहले व्रत में श्रावकजी त्रसजीव हणने का त्याग करे (हालता चालता जीव विना अपराधे मारे नहीं) और स्थावर की मर्यादा करे।

२ दूसरे व्रत में श्रावकजी मोटका झूठ नहीं बोले।

३ तीसरे व्रत में श्रावकजी मोटकी चोरी नहीं करे।

४ चौथे व्रत में श्रावकजी पर-स्त्री-सेवन का त्याग करे और अपनी स्त्री की मर्यादा करे।

५ पाँचवें व्रत में श्रावकजी परिग्रह की मर्यादा करे।

६ छठे व्रत में श्रावकजी छः (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊँची, नीची) दिशा की मर्यादा करे।

७ सातवें व्रत में श्रावकजी छव्वीस बोल की मर्यादा करे, और पन्द्रह कर्मादान का त्याग करे।

८ आठवें व्रत में श्रावकजी अनर्थ दण्ड का त्याग करे

९ नववें व्रत में श्रावकजी प्रतिदिन शुद्ध सामायिक करे ( सामायिक का नियम राखे )।

१० दशवें व्रत में श्रावकजी देसावगासिक पोषो करे, संवर करे, चौदह नियम चितारे।

११ इग्यारवें व्रत में श्रावकजी प्रति पूर्ण पोषो करे।

१२ बारहवें व्रत में श्रावकजी प्रतिदिन चौदह प्रकारे सूजतो दान देवे।

विवेचन—व्रत किसे कहते हैं ? मर्यादा पूर्वक जीवन व्यतीत करने को व्रत कहते हैं।

२३ तेरीसवें बोले साधुजी महाराज के पांच महाव्रत—

१ पहिले महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकारे जीव की हिंसा करे नहीं, करावे नहीं, करताने भलो जाणे नहीं मन वचन काया करी, तीन करण तीन जोग से।

२ दूसरे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकारे झूठ बोले नहीं, बोलावे नहीं, बोलताने भलो जाणे नहीं, मन वचन काया करी, तीन करण तीनजोग से।

३ तीसरे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकारे चोरी करे नहीं, करावे नहीं, करताने भलो जाणे नहीं, मन वचन काया करी, तीन करण तीन जोग से।

४ चौथे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकारे मैथुन सेवे नहीं,सेवावे नहीं,सेवता ने भलो जाणे नहीं, मनवचन काया करो, तीन करण तोनजोग से।

५ पाँचवें महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकारे परिग्रह राखे नहीं, रखावे नहीं राखताने भलो जाणे नहीं, मन वचन काया करी, तीन करण तीन जोग से।

विवेचन—महाव्रत किसे कहते हैं? जो सर्वथा प्रकारे सम्पूर्ण रीति से हिंसा, झूठा, चोरी मैथुन और परिग्रह का त्याग किया जाय उसे महाव्रत कहते हैं।

२४ चौवीसवें बोले भांगा ४९ को जाण पणो—११ आंक एक ग्यारह को—भांगा उपजे नव, एक करण एक जोग सुं कहणा—१ करूँ नहीं मनसा, २ करूँ नहीं वयसा ३ करूँ नहीं कायसा, ४ कराऊँ नहीं मनसा, ५ कराऊँ नहीं वयसा, ६ कराऊँ नहीं कायसा ७ अ[illegible] नहीं मनसा, ८ अणुमोदूँ नहीं

वयसा, ६ अणुमोदूं नहीं कायसा।

१२ आंक एक बारह को—भांगा उपजे नव, एक करण दोय जोग से कहणा, १ करूं नहीं मनसा वयसा, २ करूं नहीं मनसा कायसा, ३ करूं नहीं वयसा कायसा, ४ कराऊं नहीं मनसा वयसा, ५ कराऊं नहीं मनसा कायसा, ६ कराऊं नहीं वयसा कायसा, ७ अणमोदूं नहीं मनसा वयसा, ८ अणमोदूं नहीं मनसा कायसा, ६ अणमोदूं नहीं वयसा कायसा।

१३ आंक एक तेरह को—भांगा उपजे तीन, एक करण तीन जोग से कहणा—१ करूँ नहीं मनसा वयसा कायसा, २ कराऊं नहीं मनसा वयसा कायसा, ३ अणुमोदुं नहीं मनसा वयसा कायसा।

२१ आंक एक इकीस को—भांगा उपजे नव, दोय करण एक जोग से कहणा—१ करूँ नहीं कराऊं नहीं मनसा, २ करूं नहीं कराऊँ नहीं वयसा, ३ करूं नहीं कराऊं नहीं कायसा, ४ करूं नहीं अणुमोदूं नहीं मनसा, ५ करूं नहीं अणुमोदूं नहीं वयसा, ६ करूं नहीं अणुमोदूं नहीं कायसा, ७ कराऊं नहीं अणुमोदूं नहीं मनसा ८ कराऊं नहीं

अणुमोदूं नहीं वयसा, ९ कराऊँ नहीं अणुमोदूं नहीं कायसा।

२२ आंक एक बाईस को—भांगा उपजे नव, दोय करण दोय जोग से कहणा—१ करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा वयसा, २ करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा कायसा, ३ करूं नहीं कराऊं नहीं वयसा कायसा, ४ करूं नहीं अणुमोदूं नहीं मनसा वयसा, ५ करूं नहीं अणुमोदूं नहीं मनसा कायसा, ६ करूं नहीं अणुमोदूं नहीं वयसा कायसा, ७ कराऊँ नहीं अणुमोदूं नहीं मनसा वयसा, ८ कराऊं नहीं अणुमोदूँ नहीं मनसा कायसा, ९ कराऊँ नहीं अणुमोदूँ नहीं वयसा कायसा।

२३ आंक एक तेईस को—भांगा उपजे तीन दोय करण तीन जोग से कहणा—१ करूं नहीं कराऊँ नहीं मनसा वयसा कायसा, २ करूं नहीं अणुमोदूँ नहीं मनसा वयसा कायसा, ३ कराऊँ नहीं अणुमोदूँ नहीं मनसा वयसा कायसा।

३१ आंक एक इकतीस को—भांगा ऊपजे तीन, तीन करण एक जोग से कहणा—१ करूं नहीं कराऊँ नहीं अणुमोदूँ नहीं मनसा, २ करूं नहीं

# भगवान श्री शान्तिनाथ



## प्रार्थना



श्लोक:—

यस्तौति शांन्ति जिनमिन्द्र ततिर्नितान्तं ।
श्री जात रूपतनु कान्त रसाभिरामम् ॥
शान्ति सुरीभिराभि नुत नुदन् सनुष ।
श्री जात रूप तनुकान्त रसाभिरामम् ॥

भावार्थ:— कामदेव के स्वरूप को भी अपने शरीर की शोभा से तिरस्कृत करने वाले हे शान्तिनाथ प्रभु! इन्द्रों का समूह निरन्तर आपकी सेवा स्तुति करता है। क्योंकि आप भव्य प्राणियों को रोग रहित ॅ. को देने वाले हैं।

# पूर्वभव

इसी जम्बूद्वीप के अन्तर्गत दक्षिण दिशा के मण्डन रूप भरत क्षेत्र है। उसमें रत्नपुर नाम का नगर था। वहाँ श्रीसेन नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। श्रीसेन की अभिनंदिता और शिखिनन्दिता नाम्नी दो रानियाँ थीं।

बड़ी रानी अभिनन्दिता ने, एक रात को स्वप्न में यह देखा कि मेरी गोद में सूर्य और चन्द्र आये हैं। अभिनन्दिता ने अपना यह शुभ स्वप्न, अपने पति महाराजा श्रीसेन को सुनाया। महाराजा श्रीसेन ने, स्वप्न का यह फल बताया कि तुम्हारे दो उत्कृष्ट पुत्र होंगे।

समय पाकर महारानी अभिनन्दिता ने एक साथ दो पुत्र प्रसव किये। महराजा श्रीसेन ने पुत्र-जन्मोत्सव कर के, दोनों पुत्रों का क्रमशः इन्दुसेन और बिन्दुसेन नाम दिया। कुछ ही समय में दोनों कुमार बड़े हुए।

उस समय, अचल नाम के ग्राम में, धरणीजट नाम का एक ब्राह्मण रहता था। धरणीजट ब्राह्मण था तो विद्वान, फिर भी उसने एक दासी को अपनी प्रेयसी बना रखी थी। धरणीजट के संयोग से, दासी के एक पुत्र हुआ। समय पाकर

यह दासी—५ । उसका नाम कपिल था।

धरणोजट ब्राह्मण, नन्दिभूति और शिवभूति नाम के अपने लड़कों को पढ़ाया करता था। दासी पुत्र कपिल इतना बुद्धिशाली था कि—धरणोजट और नन्दिभूति शिवभूति के अध्यापन अध्ययन को सुन सुनकर, वेद का पारगामी हो गया। कुछ दिन पश्चात् कपिल, विदेश चला गया। घूमते फिरते कपिल रत्नपुर नगर में आया। रत्नपुर नगर में वह, सत्यकी उपाध्याय की पाठशाला में जाया करता था। सत्यकी उपाध्याय ने, कुशाग्र बुद्धि कपिल को कुलवान जानकर, उसके साथ अपनी सत्यभामा नाम्नी कन्या का विवाह कर दिया। कपिल, सत्यभामा के साथ आनंद-पूर्वक रहने लगा। नागरिकों के लिए कपिल प्रतिष्ठापात्र बन गया था।

एक रात को कपिल नाटक देखने गया। रात अधिक हो गई थी। वह जब घर आने लगा, तब वर्षा होने लगी। कपिल ने सोचा कि मार्ग में कोई मनुष्य तो है नहीं, फिर कपड़े क्यों भीगने दूँ! यह विचार कर कपिल ने शरीर के सब वस्त्र निकाल अपनी बगल में दबा लिये और नग्न शरीर घर को आया। घर आकर वह अपनी पत्नी सत्यभामा से कहने लगा कि—देखो, मैंने अपनी विद्या के प्रभाव से वर्षा होने पर भी कपड़े नहीं भींगने दिये। सत्यभामा ने देखा कि पति के कपड़े तो सूखे हैं, परन्तु इनका शरीर वर्षा से भीगा हुआ है। वह समझ गई कि पति, नग्न-शरीर आये हैं और इनने द्वार पर ही कपड़े पहने हैं,

लेकिन जो पुरुष राजपथ पर नग्न होकर चल सकता है, वह अवश्य ही कुलहीन है। पति को कुलहीन समझ कर सत्यभामा कपिल से विरक्त हो, श्रीसेन राजा के पास आई, और श्रीसेन राजा से प्रार्थना करने लगी कि—हे महाराज ! दुर्दैव से मुझे कुल-हीन पति मिला है, और मेरी इच्छा उसके साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने की नहीं है, अतः आप मुझे इस अकुलीन पति से छुड़ाकर मेरी रक्षा करें। राजाने, सत्यभामा की प्रार्थना स्वीकार करके, पति-पत्नी का सम्बन्ध विच्छेद करा दिया। पति से छुटकारा पाकर सत्य-भामा, तप करती हुई, राजा की संरक्षता में शील की रक्षा करने लगी।

कौशाम्बी के राजा बल की कन्या का नाम श्रीकान्ता था। श्रीकान्ता ने, राजा श्रीसेन के पुत्र कुमार इन्दुसेन को अपने लिए वर पसन्द किया। वह, स्वयंवरा होकर इन्दुसेन के घर आई। श्रीकान्ता के साथ, एक अनन्तमतिका नाम की वेश्या भी आई। अनन्तमतिका, युवती और रूपसम्पन्ना थी, इस कारण इन्दुसेन और बिन्दुसेन दोनों ही भाई उस पर मुग्ध होगये, तथा वेश्या को अपनी अपनी बताकर चर्मशरीरी होने पर भी आपस में लड़ने लगे, महाराजा श्रीसेन ने, अपने दोनों पुत्रों का आपसी कलह मिटाने के लिए बहुत प्रयत्न किया, परन्तु दोनों भाइयों में से कोई भी न माना। निराश हो, राजा श्रीसेन ने, अपनी दोनों रानियों सहित, जहरी कमल सूँघ कर, प्राण त्याग दिया। राजा और दोनों

रानियों की मृत्यु हुई जान कर, शरणागत सत्यभामा भयभीत हुई कि अब मेरी रक्षा कौन करेगा ! मेरा रक्षक राजा नहीं रहा, इसलिए कपिल मुझे सतायेगा, इस भय से सत्यभामा ने भी जहरी कमल सूँघ कर शरीर छोड़ दिया।

...शुद्ध और सरल परिणामों के प्रभाव से, ये चारों जीव उत्तरकुरुक्षेत्र में, भोग प्रधान युगलियों के दो जोड़े के रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ तीन पल्योपम का आयुष्य भोगकर, विरह रहित चारों ही जीव, प्रथम स्वर्ग में गये।

इन्दुसेन और बिन्दुसेन, दोनों आपस में युद्ध कर रहे थे। क्रोध मोह आदि के वशीभूत बने हुए दोनों कुमार, किसी के भी समझाने से नहीं माने। उसी समय, विमान में बैठ कर एक विद्याधर आया। वह युद्ध करते हुए दोनों कुमार के बीच में खड़ा हो, हाथ ऊपर करके दोनों से कहने लगा कि—अरे मूर्खों ! जिस वेश्या के लिये तुम दोनों भाई आपस में युद्ध कर रहे हो, वह तो तुम्हारी—पूर्व-भव की—बहन है ! तुम इस बात को न समझ कर, अपनी-अपनी स्त्री बनाने के लिए क्यों लड़ रहे हो ! तुम लोग मुझसे पूर्व-भव का वृत्तान्त सुनो। विद्याधर की बात सुन कर दोनों ने युद्ध बन्द कर दिया और विद्याधर से पूर्व भव का वृत्तान्त सुनने लगे। विद्याधर ने पूर्व विस्तृत वर्णन करते हुए कहा, कि—तुम दोनों भाई

और यह वेश्या, पूर्व-भव में—तीनों ही बहनें बहनें थीं; और मैं, तुम तीनों बहनों की माता थी। तुम तीनों में से एक बहन (जो अब वेश्या है) ने, एक वेश्या के लिए दो पुरुषों को युद्ध करते देख कर यह अभिलाषा की; कि मेरे तप के फलस्वरूप आगामी-भव में, मुझे भी ऐसाही सौभाग्य प्राप्त हो। यानी मैं भी ऐसी होऊँ, कि मेरे वास्ते दो पुरुष आपस में युद्ध करें। तप के बदले में इस प्रकार का फल चाहने की इच्छा के कारण, यह इस भव में वेश्या हुई है।

यह सुन कर दोनों भाइयों का मोह शान्त हुआ। वे दोनों विद्याधर से कहने लगे, कि आप पूर्व-भव में तो हमारी माता थी हीं, लेकिन इस भव में भी आपने हमारे गुरु बनकर हम पर बहुत उपकार किया है। हम आपके ऋणी हैं। ऐसा कह कर, दोनों भाई संसार से विरक्त हो गये। धर्मरुचि मुनि से दोनों भाइयों ने संयम स्वीकार कर लिया, और महान तप एवं शुभ और शुद्ध ध्यान द्वारा घातिक कर्मों को नष्ट कर, सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

इसी भरतक्षेत्र के मध्य में, वैताढ्यगिरि नाम का एक पर्वत है। उसकी उत्तर और दक्षिण दिशा में, विद्याधरों की श्रेणियां हैं। वहाँ रथनुपुर नाम का एक नगर था और ज्वलनजटी नाम का विद्याधर रहता था, जिसके अर्ककीर्ति नाम का पुत्र और स्वयंप्रभा नाम की परम सुन्दरी कन्या थी। स्वयंप्रभा का विवाह, त्रिपृष्ठ वासुदेव के साथ हुआ था।

था। अर्ककीर्ति की पत्नी का नाम, ज्योतिर्माला था। श्रीसेन राजा का जीव, ज्योतिर्माला की कोख से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ जिसका नाम अमिततेज रखा गया। सत्यभामा का जीव भी, ज्योतिर्माला की कुक्षि से पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सुतारा रखा गया। अर्ककीर्ति की बहन और त्रिपृष्ठ वासुदेव की रानी स्वयंप्रभा की कोख से, अभिनन्दिता रानी का जीव पुत्र रूप में और शिखिनन्दिता रानी का जीव पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ। इन दोनों के नाम क्रमशः श्रीविजय और ज्योतिर्प्रभा दिये। समय पाकर, अर्ककीर्ति की कन्या सुतारा का विवाह श्रीविजय के साथ और ज्योतिर्प्रभा का विवाह अमिततेज के साथ हो गया। ये दोनों परस्पर साले बहनोई और ये नन्द भोजाई परस्पर हुईं।

त्रिपृष्ठ वासुदेव का शरीरान्त होने के कुछ समय पश्चात् अचल बल्देव संसार से विरक्त हो गये और संयम स्वीकार कर लिया। तब पोतनपुर के राजा श्रीविजय हुए। उधर रथनुपुर का राज्य अमिततेज को सौंप कर, ज्वलनजटी और अर्ककीर्ति ने भी दीक्षा ले ली।

एक समय, महाराजा अमिततेज, अपनी बहन सुतारा से मिलने के लिए पोतनपुर आये। उस समय, पोतनपुर नगर में और विशेषतः पोतनपुर की राज सभा में, बड़ा ही आनन्दोत्सव था। महाराजा श्रीविजय द्वारा स्वागत सत्कार हो जाने

के पश्चात्, महाराजा अमिततेज ने उनसे इस उत्सव का कारण पूछा। महाराज अमिततेज के प्रश्न के उत्तर में, महाराजा श्रीविजय कहने लगे, 'आज से आठ दिन पहले, एक भविष्यवेत्ता आया था। मैंने उस भविष्यभाषी से पूछा, कि तुम किस लिये आये हो? तुम्हारा आने का उद्देश्य कुछ याचना करना है, या किसी प्रकार का भविष्य बताने आये हो?' उस भविष्यवेत्ता ने कहा कि मैं याचक तो हूँ ही, लेकिन इस समय याचना करने नहीं आया हूँ, किन्तु न कहने योग्य भविष्य की एक बात कहने के लिये आया हूँ, जिससे धर्मकृत्यादि द्वारा दुर्भविष्य का प्रतिकार किया जा सके। मेरे पूछने पर उसने कहा, कि—'आज के सातवें दिन, पोतनपुर के राजा पर महाघोर विद्युत्पात होगा।' यह कटु भविष्य सुन कर, मेरे प्रधान मन्त्री ने उस भविष्यभाषी से कहा, कि—जब पोतनपुर के राजा के ऊपर बिजली गिरेगी, उस समय तेरे पर क्या गिरेगा? उस भविष्यभाषी ने, प्रधान मन्त्री से कहा—मंत्रीवर, आप मेरे पर क्यों रुष्ट होते हैं? मैं तो शास्त्र में जैसा देखता हूँ, वैसा कहता हूँ। फिर भी आप पूछते हैं—इसलिए मैं आप से कहता हूँ, कि उस समय मेरे पर वस्त्राभूषण, मणिमाणिक और स्वर्णादि द्रव्य की वृष्टि होगी। भविष्यवक्ता की बात सुन कर, मैंने प्रधानमन्त्री से कहा, कि—मन्त्री, इस पर कोप न करो, यह तो यथार्थ भविष्य

कहने के कारण उपकारी ही है। भविष्यवक्ता की बात सुन कर मेरे मन्त्रिगण अपने राजा की रक्षा के लिए उपाय सोचने लगे। कोई कहने लगा कि समुद्र में विद्युत्पात नहीं होता, इसलिए महाराजा को समुद्र में रक्खा जावे। कोई, पर्वत की गुफा में रहने की सम्मति देने लगा। कोई यह कहने लगा कि भावी नहीं टलती, इसलिए कर्मनाश करने को तप करना चाहिये, क्योंकि तप का प्रभाव बहुत होता है।

इस तरह होते होते एक मन्त्री ने कहा कि इस भविष्य वक्ता की भविष्यवाणी के अनुसार पोतनपुर के राजा पर विद्युत्पात होगा, न कि श्रीविजय पर। इसलिए पोतनपुर का राजा किसी दूसरे को बना दिया जावे और तब तक महाराजा श्रीविजय धर्मध्यान करते रहें। ऐसा करने से, अहित टल जावेगा। यह सुन कर उस भविष्यवक्ता ने ऐसा कहने वाले मन्त्री से कहा, कि—मेरे निमित्तज्ञान से भी आपका मतिज्ञान विशेष निर्मल है। इस लिये जैसा आप कहते हैं ऐसा ही करना ठीक है। तब मैंने कहा कि इस योजना के अनुसार तो जिसे भी राजा बनाया जावेगा, वह निरपराधी होने पर भी व्यर्थ में मारा जावेगा। ऐसा होना तो कदापि भी उचित नहीं है। क्योंकि चींटी से लगा कर, इन्द्र तक को अपना जीवन प्यारा है। राजा का कर्त्तव्य की रक्षा करना है, और इसीलिए मैं हाथ में तलवार ले

कर बैठा हूँ। फिर मेरी रक्षा के लिए निरपराधी की हत्या होने देना मेरे लिये श्रेय कैसे हो सकता है ? मेरी बात सुन कर वह मन्त्री कहने लगा कि, हमें तो आपका भावी अनिष्ट भी दूर करना है, और किसी की हत्या भी नहीं करनी है । अतः वैश्रवण यक्ष की प्रतिमा का राज्याभिषेक करके सात दिन के लिए उसे यहाँ का राजा बना दिया जावे । हम लोग भी उस मूर्ति की सेवा सात दिन तक उसी प्रकार करेंगे जिस प्रकार आप की करते हैं ।

मन्त्री की यह बात मुझे भी जँच गई । यक्ष-प्रतिमा को राज्याभिषिक्त कर, मैं पौषधशाला में गया । वहाँ मैं पौषध करके बैठ गया । सातवें दिन, मध्याह्न समय सहसा गर्ज घुमड़ कर मेघ चढ़ आया और थोड़ी ही देर में यक्ष प्रतिमा पर भयंकर विद्युत्पात हुआ । यक्ष की प्रतिमा के टुकड़े टुकड़े हो गये । यह दुर्घटना देख कर, उस भविष्यवक्ता की भविष्यवाणी सत्य हुई और उसकी भविष्यवाणी के फलस्वरूप राजा की रक्षा हो सकी यह विचार कर, अंतःपुर एवं प्रधानों की ओर से उस भविष्य वक्ता पर स्वर्ण रत्न और वस्त्राभूषण आदि की वृष्टि हुई । मैंने भी उस भविष्यवक्ता को, पद्मिनीखण्ड नाम का नगर प्रदान किया और सम्मान सहित उसे विदा किया । यक्ष की जो मूर्त्ति विद्युत्पात से खण्ड खण्ड हो गई थी, उसके स्थान पर मैंने रत्न की मूर्त्ति बनवा दी ।

यह वृत्तान्त सुना कर महाराजा श्रीविजय, महाराज अमित-तेज से कहने लगे कि 'आप सर्वत्र जो उत्सव देख रहे हैं, वह मेरा अनिष्ट टल गया और मैं सकुशल बच गया, इस खुशी के कारण हो रहा है।' महाराजा श्रीविजय से यह वृत्तान्त सुनकर महाराजा अमिततेज को भी बहुत प्रसन्नता हुई। महाराज अमिततेज, अपनी बहन सुतारा से मिले। वस्त्राभूषण आदि से बहन का सत्कार करके महाराजा अमिततेज अपने स्थान को गये।

सत्यभामा के विरह से दुःखित वह कपिल ब्राह्मण, भव-भ्रमण करता हुआ, विद्याधरों की श्रेणी में, अश्विनीघोष नाम का राजा हुआ था। एक समय महारानी सुतारा सहित महाराजा श्रीविजय वन-क्रीड़ा करने गये। अश्विनीघोष विद्याधर ने, वन में सुतारा को देखा। पूर्व भव के स्नेह की प्रेरणा से अश्विनीघोष ने, प्रतारिणी विद्या की सहायता से सुतारा का हरण कर लिया। महाराजा श्रीविजय और महाराजा अमिततेज ने, अश्विनीघोष से युद्ध किया और उसे परास्त भी कर दिया।

अश्विनीघोष को अपना बन्दी बन

महाज्वाला विद्या को,

महाज्वाला, अश्विनीघोष

भागा। वह,

आया। भरतार्द्ध में, सीमान्तगिरि पर, अचल बलदेव मुनि को घातिक कर्म नष्ट हो जाने से केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था। वहाँ देवता लोग, केवल ज्ञान महोत्सव मना रहे थे। अश्विनीघोष भी, भागता हुआ उसी महोत्सव-स्थान पर बैठ गया, इससे महाज्वाला शक्ति वापस लौट गई। महाज्वाला शक्ति ने, सब वृत्तान्त महाराजा अमिततेज को सुनाया। महाज्वाला शक्ति से अचल मुनि को केवलज्ञान हुआ जानकर महाराजा अमिततेज और महाराजा श्रीविजय आदि, उन्हें वन्दन करने आये। वहाँ केवली, भगवान के उपदेश से, ये वैर-रहित हुए और अपने पूर्व भव का सब वृत्तान्त जानकर इन्होंने श्रावक व्रत स्वीकार किये। अश्विनीघोष विद्याधर ने तो भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर संयम स्वीकार किया।

महाराजा अमिततेज और महाराजा श्रीविजय, दीर्घकाल तक श्रावकव्रत पालते रहे। एकबार ये दोनों, मेरु पर्वत के नन्दनवन में गये। वहाँ इन्हें विपुलमति और महामति नाम के दो मुनियों के दर्शन हुए। इन दोनों ने मुनि को वन्दन करके मुनि से अपना आयुष्य पूछा। ज्ञानी मुनियों ने उत्तर दिया कि तुम दोनों का  २६ दिन शेष है। यह सुनकर दोनों दुःख करते ..., कि हमने निद्रालु, मूर्छित पालक ... हुए पुष्पवृक्ष की तरह

दोनों पुत्र युवक हुए। संसार से उपरति होने के कारण, महाराजा स्तिमितसागर ने, अपराजित कुमार की सम्मति से राज्य का भार अनन्तवीर्य को सौंप दिया और स्वयं ने दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण किया। राज्य करते हुए महाराजा अनन्तवीर्य की मैत्री, एक विद्याधर से हो गई। उस विद्याधर ने महाराजा अनन्तवीर्य को एक महाविद्या बताई और उसका साधन करने की विधि भी बताई। महाविद्या तथा उसे साधने की विधि बता कर, विद्याधर चला गया।

अनन्तवीर्य के यहाँ, बर्बरी और किराती नाम की दो दासियाँ थीं। ये दोनों दासियाँ नाट्य-गान-कला में अच्छी कुशल थीं। नारद द्वारा इन दासियों की प्रशंसा सुनकर, दमितारि प्रतिवासुदेव ने अनन्तवीर्य के यहाँ अपना दूत भेजकर दोनों दासियाँ भेजने के लिए आज्ञा की। वासुदेव अनन्तवीर्य ने दमितारि के दूत को तो यह कह कर विदा कर दिया, कि मैं विचार कर दोनों दासियों को भेज दूँगा, लेकिन हृदय में दमितारि के प्रति बहुत क्रोध हुआ। वासुदेव अनन्तवीर्य, इस विषय में अपराजित बल्देव से गुप्त रूप से मन्त्रणा करने लगे। विचार करते हुए वासुदेव ने बल्देव से कहा, कि आकाशगमनादि विद्या सिद्ध कर लेने के कारण ही दमितारि अपने पर शासन करता है; अतः अपने को अपना विद्याधर मित्र जो विद्या दे गया है, अपन उसे क्यों न साध लें? दोनों

भाई इस प्रकार विचार कर ही रहे थे, कि इतने ही में प्रज्ञप्ति आदि विद्याएँ प्रकट होकर इन दोनों भाइयों से कहने लगीं, कि—हे महाभुज ! तुम जिन्हें साधने का विचार कर रहे हो, वे विद्याएँ हम स्वयं ही आपके सन्मुख उपस्थित हैं। आपने, पूर्व भव में हमें साध रखा है, इस कारण अब पुनः सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। आप आज्ञा दीजिये, हम आपके शरीर में प्रवेश करें। यह सुन कर वासुदेव बल्देव ने उन विद्याओं की गंध पुष्प आदि से उचित पूजा करके उनकी बात के उत्तर में एवमस्तु कहा ! यह सुनकर वे विद्याएँ, तत्काल ही दोनों के शरीर में उसी प्रकार प्रवेश कर गई जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं।

दमितारि का दूत, अनन्तवीर्य के पास फिर लौट कर आया। वह, अनन्तवीर्य से कहने लगा कि आप लोग स्वामी की आज्ञा की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं। दासियों के बदले में आप दोनों अपने पर क्यों आपत्ति बुला रहे हो ! दूत की बात सुन कर, अनन्तवीर्य को बहुत क्रोध हुआ, लेकिन क्रोध को हृदय में ही दबा कर अनन्तवीर्य ने दूत से कहा कि—दमितारि बड़ी-बड़ी बहुमूल्य भेंट के योग्य है, फिर भी यदि वह दासियों से ही सन्तुष्ट होता है, तो हमें कोई आपत्ति नहीं, तुम दासियों को ले जा सकते हो। दूत से ऐसा कह कर, दोनों भाइयों ने आपस में विचार किया, कि दमितारि कैसा है। यह देखना चाहिए। हमें

प्रकार विचार कर दोनों भाई, विद्या की सहायता से दासियों का रूप बनाकर, दूत के पास गये और उससे कहने लगे कि अनन्तवीर्य महाराज ने हमें आपके पास दमितारि के पास ले जाने के लिए भेजा है। दूत, बहुत प्रसन्न हुआ और दोनों को लेकर दमितारि के पास आया। उसने दमितारि से कहा कि आपकी आज्ञानुसार दोनों दासियाँ हाजिर हैं।

दमितारि ने, दासी-वेशधारी अनन्तवीर्य और अपराजित को, नाट्यगान करने की आज्ञा दी। दोनों भाई, समस्त कलाओं में कुशल ही थे। दोनों ने, नाट्यगान कला का खूब प्रदर्शन किया। दमितारि ने प्रसन्न होकर दोनों कृत्रिम दासियों को अपनी बड़ी पुत्री कनकश्री के पास—उसे नाट्यगान कला सिखाने के लिए भेज दिया।

दासी वेशधारी अपराजित और अनन्तवीर्य ने, थोड़े ही समय में, कनकश्री को नाट्यगान कला सिखा दी। शिक्षा देते समय अपराजित, बारंबार अनन्तवीर्य के रूप गुण और शौर्य की प्रशंसा करता था। एक दिन, कनकश्री ने दासीवेशधारी अपराजित से पूछा, कि तुम बारम्बार जिसका गुणगान किया करती हो, वह पुरुष कौन है? छद्मवेशधारी अपराजित ने कनकश्री को अनन्तवीर्य का प्रशंसापूर्ण परिचय सुनाया। अनन्तवीर्य की प्रशंसा सुनकर, कनकश्री के हृदय में, अनंतवीर्य का दर्शन करने बहुत उत्कण्ठा हुई। वह विचारने लगी कि ऐसे महापुरुष

का दर्शन मुझे किस प्रकार हो सकेगा! आकृति द्वारा कनकश्री के मन के भावों को जानकर, अपराजित कनकश्री से कहने लगे— राजकुमारी, अनंतवीर्य का परिचय सुनकर, तुम कुछ पीड़ित-सी जान पड़ती हो, अतः क्या तुम महाभुज अनंतवीर्य को देखना चाहती हो? यह सुनकर, दीनता दिखाती हुई कनकश्री ने कहा कि यद्यपि मेरी इच्छा तो यही है, लेकिन मेरी यह इच्छा चंद्र को हाथ से पकड़ने के समान असम्भवसी दिखाई देती है। दासी रूपधारी अपराजित ने कहा, कि—यदि तुम अनंतवीर्य को देखने के लिए इतनी उत्कण्ठित हो, तो मैं अनंतवीर्य को यहाँ तुम्हारे सामने ला दूँगी। यह सुनकर कनकश्री कहने लगी कि—क्या तुमसे ऐसा होना सम्भव है? यदि हाँ, तो कृपा करके अभी ही उनके दर्शन कराइये। मुझे अपना भाग्य प्रबल जान पड़ता है, इसीसे तुम्हारी सहायता का संयोग मिला है। इस प्रकार की बात हो ही रही थी कि अनंतवीर्य ने अपना छद्मवेश त्याग दिया और वास्तविक रूप धारण कर लिया। तब अपराजित ने भी अपना कपटरूप त्याग अनंतवीर्य की ओर संकेत करके कनकश्री से कहा—सुभगे! मैं जिनकी प्रशंसा करता था, वे मेरे छोटे भाई अनंतवीर्य यही हैं। मैंने इनके जितने गुण कहे थे, ये उनसे भी अधिक गुणवाले हैं, यह बात तू इनको देखकर सहज ही जान सकती है।

अनंतवीर्य को देखकर, कनकश्री बहुत ही विस्मित, लज्जित एवं आनंदित हुई। अपराजित को अपने श्वसुर तुल्य मान कनकश्री, उत्तरीय वस्त्र द्वारा लज्जा करके खड़ी रही। कुछ देर पश्चात मान और लज्जा को त्याग कनकश्री अनन्तवीर्य से प्रार्थना करने लगी, कि सहसा आपका दर्शन मेरे लिए असम्भव था, परंतु भाग्य की अनुकूलता से संभव हो गया। अब आप जिस प्रकार मेरे नाट्याचार्य बने थे, उसी प्रकार पति बन कर मुझे अपनी शरण में स्थान दीजिये; अर्थात् मेरा पाणिग्रहण कीजिये। कनकश्री की प्रार्थना के उत्तर में, अनंतवीर्य ने कहा कि—हे मुग्धे, यदि तेरी इच्छा यही है,तो मेरी नगरी को चल।

कनकश्री कहने लगी—नाथ, यद्यपि मेरे प्राणों पर आप ही का राज्य है, मैं तो आपकी दासी हूँ, और आपकी आज्ञा मानना मेरा कर्तव्य है, परंतु मेरा पिता विद्या के बल से दुर्मद बना हुआ है और दुष्ट स्वभाववाला है, अतः संभव है कि वह आपके लिए कोई अनर्थ कर डाले, मुझे यही भय है। वैसे तो आप बलवान हैं, लेकिन इस समय अकेले एवं शस्त्रास्त्र रहित हैं।

वासुदेव ने उत्तर दिया—हे कातरे! तुम्हें किसी भी प्रकार के भय से भीत होनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा पिता; मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। तुम निर्भय होकर मेरे साथ चलो।

अनंतवीर्य की आज्ञा मानकर, कनकश्री उनके साथ हो ली। तब अनंतवीर्य ने ऊँचे हाथ करके उच्चस्वर में इस प्रकार घोषणा की, कि—हे पुराध्यक्ष, सेनापति, राजकुमारो, मंत्रियो, सामन्तो, और सुभटो! अपराजित भ्राता से सुशोभित मैं अनंतवीर्य, राजा दमितारि की पुत्री कनकश्री को अपने घर लिये जाता हूँ। मेरे जाने के पश्चात् तुम लोग अपवाद न बोलो इसलिए वारवार घोषणा करता हूँ। तुम लोगों की इच्छा हो तो मेरे सामने आओ और मेरी भुजा का बल देखो! इस प्रकार पुनः पुनः घोषणा करके अनंतवीर्य वासुदेव, अपने भ्राता अपराजित एवं अपनी पत्नी कनकश्री सहित वैक्रिय विमान में बैठ, आकाश मार्ग से चले। अनंतवीर्य की घोषणा सुन एवं कनकश्री सहित उन्हें जाते देख, दमितारि बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने अपने सुभटों को, कनकश्री सहित अनंतवीर्य को पकड़ लाने की आज्ञा दी, परंतु आकाश मार्ग से जाते हुए अनंतवीर्य का सुभट क्या कर सकते थे। अंत में दमितारि स्वयं अनंतवीर्य से युद्ध करने के लिये गया। निःशस्त्र वासुदेव और बल्देव को देवताओं ने अस्त्र शस्त्र दिये। दमितारि से वासुदेव बल्देव का घोर युद्ध हुआ। परिणामतः वासुदेव ने सुदर्शन चक्र द्वारा दमितारि को मार डाला। दमितारि को मरा जान, देवताओं ने, वासुदेव बल्देव पर पुष्पवृष्टि की और यह घोषणा की, कि ये महाबाहु अनंतवीर्य, इस

विजयार्द्ध के वासुदेव हैं, अतः समस्त राजा एवं सामंत इनकी शरण ग्रहण करो । दिव्य घोषणा को मानकर, समस्त राजा सामंतों ने अनंतवीर्य के आगे अपना मस्तक झुकाया और अनंतवीर्य की शरण ली ।

सब विद्याधरों एवं राजाओं सहित अनंतवीर्य, भ्राता तथा पत्नी को लिए हुए विमान द्वारा चले । कनकगिरि [ मेरु ] के समीप जब विमान आया, तब विद्याधरों के कहने से अनंतवीर्य अपने साथ के लोगों सहित पर्वत पर उतर पड़े और पर्वत की शोभा देखने लगे । उस समय वहां पर कीर्तिधर मुनि के घातक कर्म क्षय हुये थे, और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था; इसलिये देवता लोग केवलज्ञान-महोत्सव मनाने के लिये आये । अनंतवीर्य वासुदेव को यह जान कर बहुत हर्ष हुआ । वे, सब साथियों सहित, केवली भगवान को वंदना करने आये । वंदन एवं वाणी श्रवण के पश्चात् कनकश्री ने, अपने मृत पिता बन्धु आदि के सम्बन्ध में केवली भगवान से प्रश्न किया । भगवान ने, उनके पूर्व भव का सब वृत्तांत वर्णन किया, जिसे सुन कर कनकश्री को संसार से वैराग्य हो गया । कनकश्री ने अपने पति एवं जेठ से आत्मकल्याण के लिये आज्ञा मांगी । वासुदेव बलदेव ने विस्मय भरे नेत्रों से कनकश्री की ओर देख, कनकश्री से कहा कि तुम्हारा कार्य निर्विघ्न हो, यही हमारी शुभ कामना है, परंतु

हमारी इच्छा है कि तुम शुभानगरी चलो, वहां जब भगवान पधारें, तब इन के समीप दीक्षा लेना। कनकश्री ने यह स्वीकार किया और अपने पति आदि के साथ शुभानगरी आई।

शुभानगरी पहुँच कर, राजाओं तथा विद्याधरों ने अनंतवीर्य को अर्द्धचक्री पद का अभिषेक किया। कालांतर से वहां केवली भगवान कीर्तिधर भी पधार गये। वासुदेव बलदेव उन्हें वंदन करने गये। कनकश्री ने पति आदि से आज्ञा प्राप्त करके भगवान के पास से संयम स्वीकार किया। अनेक प्रकार के तप द्वारा कर्मों का नाश कर, कनकश्री सिद्धि गति को प्राप्त हुई।

सम्यक्त्वधारी वासुदेव बलदेव, राज्य का उपभोग करने लगे। चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य भोग कर, अनंतवीर्य वासुदेव, प्रथम नरक में गये। स्तिमितसागर राजा, चमरेंद्र हुए थे। उन्होंने, अनंतवीर्य वासुदेव को मिलने वाली वेदना शांत करने का प्रयत्न किया।

अनंतवीर्य वासुदेव के शोक से वैराग्यवंत होकर अपराजित बलदेव ने, अपने पुत्र को राज्य देकर राजपरिवार के सोलह हजार पुरुषों सहित दीक्षा ले ली। परिषह सहन एवं तप के द्वारा आत्मा को पवित्र बना अपराजित ने अनशन कर लिया और बारहवें कल्प में जा अच्युतेंद्र हुए।

नरक से निकल कर, अनंतवीर्य का जीव वैताढ्य पर्वत

पर, मेघनाद नामक विद्याधरों का ऋद्धिमान राजा हुआ। एक समय, मेघनाद, वैताढ्य पर्वत पर आये। वहाँ, मुनि के दर्शन करने को अच्युतेन्द्र भी पधारे थे। अच्युतेन्द्र ने, मेघनाद को प्रतिबोध दिया, जिससे मेघनाद ने दीक्षा ग्रहण की और दीर्घ-काल तक तप करने के पश्चात् अनशन द्वारा शरीर त्याग बारहवें कल्प में सामानिक इन्द्र पद प्राप्त किया।

इसी जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह में सीता महानदी के तट पर मंगलावती नामकी विजय है। वहाँ, रत्न संचया नामकी नगरी थी। और क्षेमंकर नाम के राजा ❀ राज्य करते थे, जिनकी रानी का नाम रत्नमाला था।

अपराजित बलदेव का जीव, बारहवें देवलोक में अच्युतेन्द्र का आयुष्य भोग कर, रत्नमाला के गर्भ में आया। रत्नमाला ने, रात्रि के शेष भाग में चौदह महास्वप्न देखे और पन्द्रहवाँ स्वप्न वज्र का देखा। रत्नमाला जागृत हुई। उसने, सब स्वप्न अपने पति को सुनाये। महाराजा क्षेमंकर ने कहा कि स्वप्न के फल को देखते हुए, तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र होगा।

गर्भकाल की समाप्ति पर, महारानी रत्नमाला ने, उत्तम पुत्र को जन्म दिया। पुत्रजन्मोत्सव मना कर महाराजा क्षेमंकर ने, बालक का नाम वज्रायुध रखा। बालवय समाप्त करके जब वज्रा-

❀ यह राजा इसी भव में तीर्थंकर हुये हैं।

युध युवक हुए, तब उनका विवाह, लक्ष्मीवती नाम की कन्या से हुआ। कुछ काल पश्चात, अच्युत देवलोक का आयुष्य समाप्त करके अनंतवीर्य का जीव, लक्ष्मीवती के गर्भ में आया और समय पर, पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। वज्रायुध के इस बालक का नाम सहस्रायुध रखा गया।

एक बार क्षेमंकर महाराजा, अपने पुत्र पौत्र और मन्त्री सामन्त सहित सभा में बैठे थे। उस समय, ईशान्य कल्प में देव-सभा स्थित ईशानेन्द्र ने कहा, कि पृथ्वी पर, वज्रायुध जैसा दृढ़ सम्यक्त्वधारी कोई भी नहीं है। वहाँ उपस्थित चित्रचूल देव को, ईशानेन्द्र की इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। मिथ्यात्व की प्रेरणा से वह, महाराजा क्षेमंकर की सभा में आया और कहने लगा, कि संसार में पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, लोक, परलोक आदि कुछ भी नहीं है। लोग, आस्तिकता की बुद्धि रखकर, अनावश्यक कष्ट पाते हैं। देव की बात सुन कर, वज्रायुध ने देव से कहा, कि—हे देव, तुम प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध बात क्यों कह रहे हो! तुम अपने ज्ञान द्वारा अपना पूर्वभव ही क्यों नहीं देखते! यदि पुण्य का फल न होता, तो तुम स्वर्ग में देव कैसे होते! इसलिए 'लोक' 'परलोक' और पुण्य पाप आदि सब कुछ हैं। इस प्रकार युक्ति द्वारा वज्रायुध ने, उस देव को प्रति-बोध दिया। देव प्रसन्न होकर कहने लगा, कि—

तीर्थंकर हैं, उनकी बुद्धि का क्या कहना है! अब कृपा करके मुझे सम्यक्त्व दीजिये तथा बदले में मुझ से कुछ मांगिये। वज्रायुध ने, उसे समकित दी और उससे यही माँगा कि तुम समकित पर दृढ़ रहना। देव ने कहा कि ऐसा करने में तो मुझे ही लाभ है, इसलिए कुछ और मांगो। वज्रायुध ने कहा कि बस जो माँगना था, वह माँग लिया। तब चित्रचूल देव बहुत प्रसन्न हुआ और वज्रायुध को अनेक दिव्य अलंकार देकर, अपने स्थान को गया। चित्रचूल देव ने, वापस जाकर ईशानेन्द्र से प्रार्थना की, कि वज्रायुध वास्तव में वैसे ही हैं, जैसा कि आपने उनकी प्रशंसा करते हुए बताया था। तब ईशानेन्द्र यह कहकर वज्रायुध की प्रशंसा करने लगे, कि इसी जम्बुद्वीप के भरतक्षेत्र में वे पाँचवें चक्रवर्ती और सोलहवें तीर्थंकर होंगे।

लोकान्तिक देवों की प्रार्थना पर, महाराजा क्षेमंकर ने वज्रायुध को राज्य सौंप कर संयम स्वीकार कर लिया। विविध प्रकार के अभिग्रह एवं दुस्तर तप करने से, क्षेमंकर स्वामी के घनघातिक कर्म क्षय हो गये और उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। तब इन्द्र देव और महाराजा वज्रायुध ने, केवलज्ञान की महिमा की तथा भगवान की वाणी श्रवण करके अपने स्थान को लौट आये।

महाराजा, वज्रायुध को अस्त्र-शाला के अधिकारी ने यह बधाई दी कि अस्त्रशाला में चक्ररत्न प्रगट हुआ है। वज्रायुध

ने, विधिपूर्वक चक्ररत्न की पूजा की। इसी प्रकार अन्य तेरह रत्न भी प्रकट हुए। चक्र के पीछे चल कर महाराजा वज्रायुध ने, समस्त राजाओं पर विजय प्राप्त की और छहों खण्ड साध उस विजय के चक्रवर्ती हुए।

एक समय चक्रवर्ती वज्रायुध सभा में बैठे थे। उस समय एक विद्याधर भागता हुआ आया और उसने चक्री की शरण ग्रहण की। उस शरणागत विद्याधर के पीछे ही एक विद्याधरी और एक विद्याधर भी आया। ये दोनों, चक्रवर्ती वज्रायुध से कहने लगे, कि आप इस दुष्टात्मा को छोड़ दीजिये, हम दोनों इस का वध करने आये हैं। महाराजा वज्रायुध, त्रिकालदर्शी एवं अवधिज्ञानी थे, इसलिए उन्होंने उन तीनों के पूर्व भव एवं भावी भव का समस्त वृत्तान्त सुना कर, निर्वैर होने का उपदेश दिया,जिससे वे तीनों निर्वैर हुए। पश्चात् ये हाथ जोड़ कर, कहने लगे कि यदि आपके ये वचन हमें सुनने को न मिलते तो हम नरक में ही स्थान पाते। अब हम भगवान क्षेमंकर की शरण में जाना चाहते हैं। अतः आप हमें आज्ञा दीजिये। चक्री ने, उन्हें आज्ञा दी, और उन्होंने, क्षेमंकर भगवान से संयम स्वीकार करके आत्मकल्याण किया।

कुछ काल पश्चात् श्री क्षेमंकर भगवान, रत्नसंचया नगरी में पधारे। [illegible] भगवान को वंदन करने गये। भगवान का

उपदेश श्रवण करके चक्रवर्ती ने भगवान से यह प्रार्थना की कि- हे प्रभो ! मैं कुमार सहस्रायुध को राज्य सौंप कर पुनः आपकी सेवा में उपस्थित होऊँ, तब तक आप यहीं विराजे रहने की कृपा करिये। भगवान से यह प्रार्थना करके, वज्रायुध चक्रवर्ती नगरी में आये। वहाँ, उन्होंने, सहस्रायुध को राज्याभिषेक किया। पश्चात् भगवान की सेवा में उपस्थित होकर चार हजार राजाओं, चार हजार अपनी रानियों और सात सौ अपने पुत्रों सहित वज्रायुध चक्रवर्ती ने संयम स्वीकार किया।

वज्रायुध मुनि, अनेक प्रकार के तप करते हुए, सिद्ध पर्वत पर आये। वहाँ वे, वार्षिक प्रतिमा धारण करके रहे। उस समय अश्वग्रीव राजा के दो पुत्र-जो भवभ्रमण करते हुए असुरकुमार देव हुए थे, वे उधर आ निकले। वज्रायुध मुनि को देख कर, उन्हें वज्रायुध मुनि के प्रति अमिततेज के भव का वैर हो आया। जिससे वे, उपद्रव करने लगे और अनेक प्रकार के रूप बना बनाकर वज्रायुध मुनि को उपसर्ग देने लगे। इतने ही में, रम्भातिलोत्तमा आदि इन्द्र की अप्सराएँ, अर्हन्त प्रभु को वन्दन करने के लिए जाती हुई उधर से निकलीं। देवों द्वारा वज्रायुध मुनि को उपसर्ग होता देख कर, उन्होंने उन देवों से कहा, कि - अरे पापात्माओ ! तुम यह क्या दुष्कर्म कर रहे हो ! अप्सराओं के यह कहते ही, वे देव भाग गये। अप्सराएँ, आगे गईं और

वज्रायुध मुनि, प्रतिमा पाल कर जन पद में विचरने लगे।

महाराजा सहस्रायुध, राज्य कर रहे थे। पुण्य योग से उनके नगर में, पिहिताश्रव गणधर पधारे। गणधर महाराज की वाणी श्रवण करने से, सहस्रायुध को भी संसार से विरक्ति हो गई। उन्होंने संयम स्वीकार करलिया और जनपद में विचरने लगे। योगायोग से वज्रायुध और सहस्रायुध दोनों मुनि, एक स्थान पर मिल गये। दोनों मुनि, साथ ही विचरने लगे। अन्त में, इषत्प्राग्भार पर्वत पर दोनों मुनियों ने अनशन कर लिया और शरीर त्याग, तीसरे ग्रैवेयक में, पचीस सागर की आयुवाले महर्द्धिक देव हो, अनुपम सुख का अनुभव करने लगे।

इसी जम्बू द्वीप के पूर्व महाविदेह में, पुष्कलावती विजय के अन्तर्गत, पुण्डरीकिणी नाम की एक नगरी थी। वहाँ घनरथ नाम के महाराजा राज्य करते थे। महाराजा घनरथ के प्रियमति और मनोरमा नाम की दो रानियाँ थीं। तीसरे ग्रैवेयक की आयु समाप्त कर के वज्रायुध का जीव, महारानी प्रियमति के उदर में आया, तब महारानी ने स्वप्न में, गर्जते बरसते मेघ के साथ विद्युत् प्रकाश देखा। महारानी प्रियमति ने, अपना स्वप्न महाराजा घनरथ को सुनाया। उन्होंने स्वप्न सुनकर कहा, कि तुम्हारे गर्भ से, मेघ की तरह पृथ्वी का संताप हरने वाला पुत्र होगा।

महारानी प्रियमति की ही तरह महारानी मनोरमा ने भी

ध्वजापताका सहित रत्न की घूंघरियोंवाला रथ, स्वपन में देखा। महारानी मनोरमा के गर्भ में, सहस्त्रायुध का जीव, तीसरे ग्रैवेयक का आयुष्य समाप्त करके आया था।

समय पाकर दोनों रानियों ने, एक-एक तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। महाराज ने पुत्र जन्मोत्सव मनाकर, दोनों पुत्रों का क्रमशः मेघरथ और दृढरथ नाम दिया। दोनों पुत्र बड़े हुए,तब अनेक राजकन्याओं के साथ दोनों का विवाह हुआ।

एक समय महाराजा घनरथ–जो तीर्थंकर थे–पुत्र-पौत्रादि परिवार सहित महल में बैठे थे। उसी समय वहाँ पर सुसेना नाम की गणिका, अपने हाथ में एक मुर्गा लेकर आई और कहने लगी कि–मेरा कुक्कुट अपनी जाति में कुक्कुट रत्न के समान ऊँचा है। इसे कोई दूसरा कुक्कुट नहीं जीत सकता। यदि इस मेरे मुर्गे को कोई दूसरा मुर्गा जीत ले, तो मैं एक लक्ष स्वर्ण-मुद्रा दूँगी। यह सुनकर महारानी मनोरमा ने गणिका से कहा, कि तुम्हारे मुर्गे के साथ मैं अपना मुर्गा लड़ाती हूँ। महारानी मनोरमा ने, गणिका के मुर्गे से लड़ने के लिए अपना मुर्गा छोड़ा। दोनों मुर्गों का युद्ध होने लगा, लेकिन न तो कोई कुक्कुट जीतता था, न कोई हारता ही था। तब महाराजा घनरथ ने कहा,कि इन दोनों में से कोई भी कुक्कुट जीते हारेगा नहीं। कुमार मेघरथ ने महाराजा घनरथ से इसका कारण पूछा। त्रिकालदर्शी

महाराजा घनरथ ने दोनों मुर्गों की पूर्व भव की बात सुना कर कहा कि ये दोनों कुक्कुट समान बल वाले हैं, इसलिए कोई किसी से न हारेगा। यह सुन कर कुमार मेघरथ ने कहा, कि समान पराक्रमी होने के साथ ही ये दोनों कुक्कुट विद्याधरों से अधिष्ठित हैं। महाराजा घनरथ की प्रेरणा से अवधि-ज्ञानी कुमार मेघरथ ने विद्याधरों का पूर्व वृतान्त सुनाकर कहा कि इन में के दोनों विद्याधर, अपने पूर्व भव के पिता—जो इस समय महाराजा घनरथ हैं—का दर्शन करने आये हैं और कौतूहल वश, इन कुक्कुटों के शरीर में प्रवेश करके युद्ध दिखाया है। कुमार मेघरथ का कथन सुनकर, दोनों विद्याधर प्रकट हुए और महाराजा घनरथ को प्रणाम करके अपने स्थान को गये।

दोनों कुक्कुटों ने भी यह सब वृत्तान्त देखा सुना। परिणामों की विशुद्धि से, दोनों कुक्कुटों को वहीं जातिस्मृति ज्ञान हुआ। वे, घनरथ महाराजा को प्रणाम करके पश्चाताप करते हुए कहने लगे—हे प्रभो, हम आत्मकल्याण कैसे करें, यह कृपा करके बताइये! महाराजा घनरथ ने सम्यक्त्व का स्वरूप समझा कर दोनों को समकित दी। समकित पाते ही, दोनों कुक्कुटों ने अनशन करके शरीर त्याग किया, और भूतरत्न नाम की बड़ी अटवी में, ताम्रचूल नाम के महर्द्धिक देव हुए। अवधिज्ञान द्वारा अपना पूर्व भव जानकर दोनों ही देव, अपने पूर्व भव के उपकारी मेघ-

रथ की सेवा में उपस्थित हुए और मेघरथ से प्रार्थना करने लगे, कि हम संसार की अनेक योनियों में भ्रमण करते थे, परन्तु आप की कृपा से हम इस उत्तम देवयोनि को प्राप्त कर सके हैं। अब आप हम पर प्रसन्न होइये और यद्यपि आप सब कुछ जानते हैं, फिर भी आप हमारे विमान में बैठकर मनुष्य लोक का अवलोकन कीजिये।

उभयदेवों की प्रार्थना स्वीकार करके सपरिवार कुमार मेघरथ विमान में सवार हुए। विमान में बैठ कर कुमार मेघरथ ने अपने परिवार सहित मनुष्य लोक [ढाई द्वीप] की प्रदक्षिणा की और फिर अपनी नगरी को लौट आये।

लोकान्तिक देवों की प्रार्थना से महाराजा घनरथ ने राजपाट कुमार मेघरथ को सौंप दिया तथा कुमार दृढ़रथ को, उनका युवराज बना दिया और आप दीक्षा लेने के लिये वार्षिक दान देने लगे। वर्ष की समाप्ति पर महाराजा घनरथ ने संयम स्वीकार कर लिया तथा कर्म क्षय कर चार तीर्थ प्रवर्ता के मोक्ष प्राप्त किया।

महाराजा मेघरथ, राज्य करने लगे। एक दिन वे राजसभा में बैठे थे, इतने ही में एक भय कम्पित कबूतर, महाराजा मेघरथ की गोद में आ पड़ा और करुण स्वर में त्राहि-त्राहि पुकारने लगा। महाराज मेघरथ ने, आश्वासन देकर कबूतर को निर्भय किया। कबूतर निर्भय होकर महाराजा मेघरथ की गोद में बैठा था, इतने ही में एक बाज आया और यह कहने लगा, कि—हे महा-

राजा यह मेरा भक्ष्य है, अतः आप इस कबूतर को छोड़ दीजिये। महाराजा मेघरथ ने बाज को उत्तर दिया, कि क्षात्रधर्म के विरुद्ध, मैं शरणागत पक्षी, तुझे नहीं दे सकता, और तुझे भी मैं यही समझाता हूँ, कि दूसरे के प्राणनाश द्वारा, अपने प्राणों का पोषण करना कदापि उचित नहीं है। तू अपने से प्राण सब के समझ। इसके सिवा पंचेन्द्रिय का वध, नरक का कारण है, इसलिये प्राण वध त्याग दे। बाज कहने लगा—महाराज, जिस प्रकार यह कपोत मेरे भय से आपकी शरण आया है, उसी प्रकार मैं भी क्षुधा के कष्ट से पीड़ा पाकर आपकी शरण आया हूँ। करुणावान पुरुष सभी पर करुणा करते हैं, अतः जिस प्रकार आप इस पारावत की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार मेरी भी रक्षा कीजिये और मेरा भक्ष्य मुझे दीजिये। मैं, मांस भोजी प्राणी हूँ और ताजा मांस ही खाता हूँ। मैं क्षुधा से पीड़ित हूँ, अतः आप कबूतर को छोड़ दीजिये।

महाराजा मेघरथ ने, बाज को अनेक तरह से समझाया, परन्तु उसने क्षुधा-पीड़ा के नाम पर, एक भी बात स्वीकार नहीं की। तब मेघरथ ने उससे कहा कि तू कुछ भी कह, शरणागत को शत्रु के हवाले कर देना, क्षात्र धर्म के विरुद्ध है, अतः मैं क्षत्रिय ऐसा कदापि नहीं कर सकता। यह सुन, बाज ने कहा, कि यदि इस कबूतर को नहीं दे सकते, तो कृपया इसके

बराबर अपने शरीर का मांस ही दीजिए। महाराजा मेघरथ ने, बाज की यह बात स्वीकार करली। उन्होंने तराजू मंगवाई। महाराजा मेघरथ ने, तराजू के एक पलड़े में कबूतर को बैठाया और दूसरे पलड़े में शस्त्र द्वारा अपने शरीर का मांस काट-काट कर धरने लगे। देव-माया से कबूतर का बोझा बढ़ता ही गया। मेघरथ भी उदारता-पूर्वक अपने शरीर का मांस काट-काट कर पलड़े में रखते गये, परन्तु कबूतर वाला पलड़ा नीचा ही रहा, बराबर न हुआ। तब धीरवीर और दयासागर महाराजा मेघरथ ने, अपना सारा शरीर ही पलड़े में रख दिया। यह देख कर रानियां मंत्री आदि हाहाकार करके मेघरथ से कहने लगे, कि आप यह क्या कर रहे हैं। एक तुच्छ पक्षी की रक्षा के लिए अपना शरीर क्यों दे रहे हैं? यह परावत, पक्षी नहीं किन्तु कोई माया है। पक्षी में इतना भार हो ही नहीं सकता। लोगों के बहुत कुछ कहने पर भी, मेघरथ, किंचित भी विचलित नहीं हुए, किन्तु यही विचारते रहे कि इस नाशवान शरीर द्वारा एक प्राणी की रक्षा हो रही है, यह तो बड़े हर्ष की बात है। उसी समय वहाँ एक देव प्रगट हुआ और महाराजा मेघरथ के चरणों में गिरकर क्षमा-प्रार्थना करके कहने लगा, कि ईशानेन्द्र महाराज ने देव सभा में आपकी प्रशंसा की थी, परन्तु मुझे उस पर विश्वास नहीं हुआ। इस-लिये मैं, आपकी परीक्षा करने आया। मार्ग में, मैंने इन पक्षियों

को देखा और इन के शरीर में प्रवेश करके यह सब किया। अब मुझे मालूम होगया कि ईशानेन्द्र ने आपकी जो प्रशंसा की थी, आप उससे भी अधिक दयालु, क्षात्र-धर्म का पालन करने वाले और धीरवीर हैं। इस प्रकार महाराजा मेघरथ की प्रशंसा एवं उनसे क्षमा-प्रार्थना करके वह देव, स्वर्ग में गया।

देव के जाने के पश्चात् मेघरथ से उनके मन्त्री आदि पूछने लगे कि—हे भगवान्, ये दोनों पक्षी पूर्व भव में कौन थे और इनमें वैर कैसे हुआ तथा यह देव कौन था? अवधिज्ञान की सहायता से महाराजा मेघरथ कहने लगे, कि—इसी जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में, एक श्रेष्ठि के दो पुत्र थे। दोनों पुत्र, व्यापारार्थ विदेश गये। एक अमूल्य रत्न के लिये, दोनों भाई आपस में लड़े। उस लड़ाई में दोनों ही की मृत्यु हो गई और इस भव में दोनों कबूतर हुए। पूर्व-भव के वैर से ये दोनों इस भव में भी वैर रख रहे हैं। पक्षियों का पूर्व-भव सुना कर महाराजा मेघरथ उस देव का पूर्व-भव बताने लगे। वे कहने लगे कि यह देव इसी जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र की रमणीय विजय में, दमतारि नाम का प्रति-वासुदेव था और मैं, शुभानगरी में, अपराजित बल्देव था तथा भाई दृढ़रथ, अनन्तवीर्य वासुदेव था। कनकश्री नाम की दमतारि की कन्या के लिए, हम दोनों से [illegible] हुआ था और हमने, दमतारि को मार

था। इसकारि, भव-भ्रमण करता हुआ यहाँ उत्पन्न हुआ था। यहाँ, कष्ट सहन किये, इससे यह देव हुआ। पूर्व-भव के इसी वैर के कारण, इसे ईशानेन्द्र द्वारा की गई मेरी प्रशंसा, असह्य हुई थी।

अपने पूर्व भव की कथा सुन कर बाज और कपोत को जातिस्मृति ज्ञान हुआ। वे, मेघरथ से कहने लगे—हे महाराज, लोभवश हम मनुष्य भव तो हारे ही थे, लेकिन इस भव में भी हम नरक जाने की ही सामग्री कर रहे थे। आप ही ने हमें नरक से बचाया है। अब हमें हमारे कल्याण का मार्ग बताइये। महाराज मेघरथ ने, अवधिज्ञान द्वारा अवसर जानकर, दोनों को अनशन करने की आज्ञा दी। अनशन द्वारा शरीर त्याग, दोनों पक्षी, देव भव को प्राप्त हुए।

एक समय महाराजा मेघरथ, अष्टम तप करके पौषधशाला में, कायोत्सर्ग किये बैठे थे। उसी समय, अपने अन्तःपुर में बैठे हुए ईशानेन्द्र महाराज ने, 'नमो भगवते तुभ्यं,' कह कर नमस्कार किया। यह देखकर इन्द्राणियों ने ईशानेन्द्र से पूछा—महाराज, आप समस्त जगत के वन्द्य हैं, फिर आपने भी अति-भक्ति से किसको नमन किया? ईशानेन्द्र महाराज ने उत्तर दिया—हे देवियो! जम्बूद्वीप की पुष्कलावती विजय के अंतर्गत पुण्डरी-किणी नगरी में, घनरथ तीर्थंकर के पुत्र महाराजा मेघरथ, अष्टम

तप पूर्वक, महाप्रतिमा (ध्यान) धारण करके बैठे हैं। महाराजा भविष्य में इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में सोलहवें तीर्थंकर होंगे, इससे मैंने उन्हें नमस्कार किया है। महाराजा मेघरथ को ध्यान से चलायमान करने में, इन्द्रसह सुरासुर का समूह भी समर्थ नहीं है।

ईशानेन्द्र महाराजा द्वारा की गई महाराज मेघरथ की प्रशंसा सुरूपा और अतिरूपा नाम की इन्द्रानियों को सहन नहीं हुई। ये दोनों, मनुष्यलोक में आई। राजा मेघरथ को ध्यान से डिगाने के लिए दोनों इन्द्रानियां, महाराजा मेघरथ के सामने हाव भाव दिखाने लगीं और इस तरह रातभर चेष्टा करती रहीं परन्तु जिस प्रकार वज्र पर किया गया प्रहार व्यर्थ होता है, उसी प्रकार इन्द्रानियों की भी सब चेष्टा व्यर्थ हुई। सवेरा होने पर, निराश हो इन्द्रानियाँ, अपनी माया समेट कर, और बार-बार महाराजा मेघरथ से क्षमायाचना करके, अपने स्थान को गई।

महाराजा मेघरथ ने, प्रतिमा तथा पौषध पालकर पारणा किया, परन्तु रात की घटना से उन्हें संसार से विरक्ति हो गई। पति को संसार से विरक्त देख कर महारानी प्रियमित्रा को भी संसार से [illegible] गया। पुण्ययोग से भगवान घनरथ

पुण्डरीकिणी नगरी में पधारे। महाराजा मेघरथ इन्हें वंदन करने गये। भगवान की वाणी सुन कर महाराजा मेघरथ ने भगवान से प्रार्थना की, कि—हे प्रभो, कृपा करके आप यहीं विराजे रहिये, मैं राज्य का प्रबंध करके आपके समीप दीक्षा लेने के लिये उपस्थित होता हूँ। भगवान से यह प्रार्थना करके महाराजा मेघरथ, नगरी में वापस आये और अपने भाई दृढ़रथ युवराज को राज भार सौंपने लगे। दृढ़रथ युवराज ने, हाथ जोड़ कर महाराजा मेघरथ से प्रार्थना की, कि—हे पूज्य भ्राता, आज तक तो आपने मुझे अपने से दूर नहीं किया, फिर अब आत्म-कल्याण के समय आप मुझे दूर क्यों करते हैं? भाई, मुझे अपने से दूर न करिये, मैं भी आपके साथ चारित्र ग्रहण करूँगा। अंत में, कुमार मेघसेन को राज भार सौंप कर, मेघरथ और दृढ़रथ ने, अन्य सात सौ राजकुमारों और चार सहस्र राजाओं के साथ संयम स्वीकार किया।

मेघरथ मुनि ने, ग्यारह अंग का ज्ञान प्राप्त किया तथा सिंहनीक्रीडित आदि तप एवं बीस बोलों में से कई बोल की आराधना करके तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। अंत समय में, दृढ़रथ मुनि सहित पण्डित मरण से शरीर त्यागा और सर्वार्थ सिद्ध महा विमान में, तैंतीस सागर की स्थिति वाले देव हुए और दोनों, दिव्य सुख भोगने लगे।

# अन्तिम भव

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, कुरुदेशान्तर्गत हस्तिनापुर नाम का एक प्रख्यात नगर था। यह नगर सुन्दरता में स्वर्ग की समता करता था। महाराजा विश्वसेन वहाँ के राजा थे, अचिरा नाम्नी शीलादि गुणों से अलंकृत जिनकी पटरानी थी।

सर्वार्थसिद्ध महाविमान का आयुष्य समाप्त करके मेघरथ का जीव, भादौं कृष्णा ७ को—जब चन्द्र का योग भरिणी नक्षत्र के साथ हुआ था—महारानी अचिरा के गर्भ में आया। उस समय महारानी अचिरा, सुख-निद्रा में शयन किये थीं। तीर्थंकर के गर्भ सूचक चौदह महास्वप्न देखकर, महारानी अचिरा जाग उठीं। उन्होंने महाराजा विश्वसेन को स्वप्न सुनाये, जिन्हें सुनकर महाराजा विश्वसेन ने कहा, कि स्वप्नों के फल का विचार करते हुए जान पड़ता है, तुम्हारी कोख से, लोकोत्तर गुण-विभूषित पुत्र होगा।

प्रातःकाल महाराजा विश्वसेन ने, स्वप्नशास्त्रियों को बुलाकर स्वप्नों का फल पूछा। स्वप्न शास्त्रियों ने कहा, कि स्वप्नों के प्रभाव से महारानी, चक्री या धर्मचक्री (तीर्थंकर) पुत्र प्रसव करेंगी। महाराजा विश्वसेन ने, पुरस्कार सम्मान देकर, [illegible]ों को बिदा किया।

महारानी अचिरा, गर्भ का पोषण करने लगीं । उन्हीं दिनों, कुरुदेश में महामरी रोग का बड़ा उपद्रव था। प्रजा में हाहाकार मचा हुआ था। शान्ति के लिए अनेक प्रयत्न किये गये, परन्तु शान्ति न हुई। तब गर्भवती महारानी अचिरा ने महल की छत पर चढ़कर, चारों ओर दृष्टिपात किया। महारानी अचिरा की दृष्टि जिस ओर भी पड़ी, गर्भ के प्रताप से, वहां का उपद्रव शान्त हो गया। इस प्रकार सारे देश में शान्ति हुई और लोग कष्टमुक्त हुए।

गर्भकाल समाप्त होने पर, ज्येष्ठ कृष्णा १३ की रात को–चन्द्र ने भरिणी नक्षत्र के साथ योग जोड़ा उस समय–जिस प्रकार पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है, उसी प्रकार महारानी अचिरा ने, मृग के चिन्ह वाले, स्वर्णवर्णी, और एक सहस्र आठ लक्षणों के धारक अनुपम पुत्र को जन्म दिया। भगवान् का जन्म होते ही, क्षण भर के लिए त्रिलोक में उद्योत हुआ और नारकीय जीवों को भी शान्ति हुई। इन्द्र, देव और दिक् कुमारियों ने भगवान् का जन्मकल्याण मनाया और भगवान् को पुनः माता के पास लाकर, छत के चंदवे पर पुष्पों का गुच्छा, वस्त्र और कुण्डल जोड़ी रख, सब देव नन्दीश्वर द्वीप को गये। वहाँ अष्टाह्निका महोत्सव मना, सब देव अपने स्थान को गये।

महाराजा विश्वसेन ने, पुत्र जन्मोत्सव मनाकर, भगवान् का नाम शान्तिनाथ रखा। इन्द्र संक्रामित अंगुष्टामृत का पान करते हुए, बालक्रीड़ा समाप्त करके भगवान्, युवक हुए। उस समय भगवान् का चालीस धनुष ऊँचा शरीर, कल्पवृक्ष के समान शोभायमान जान पड़ता था। भगवान् शान्तिनाथ ने, पिता के अत्याग्रह से भोग देनेवाले शुभकर्मों को निःशेष करने के लिए, यशोमति आदि अनेक राज्यकन्याओं का पाणिग्रहण किया।

दाम्पत्य सुख भोगते हुए, भगवान शान्तिनाथ की आयु जब पचीस हजार वर्ष की हुई, तब महाराजा विश्वसेन ने, राज्यभार भगवान् शान्तिनाथ को सौंप दिया और स्वयं आत्म-कल्याण में लग गये। महाराजा शान्तिनाथ, विधि पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। कुछ काल पश्चात् सर्वार्थसिद्ध विमान का आयुष्य भोग कर, दृढरथ का जीव, महारानी यशोमति के गर्भ में आया। महारानी यशोमति ने, स्वप्न में सूर्य देखा। गर्भकाल समाप्त होने पर महारानी ने, महाभाग्यशाली पुत्र का प्रसव किया। पुत्र जन्मोत्सव मनाकर महाराजा शान्तिनाथ ने बालक का नाम चक्रायुध रखा।

महाराजा शान्तिनाथ को जब राज्य करते पचीस हजार वर्ष बीत गये, तब इनके आयुधागार में ज्योतिमान् चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। महाराजा ने, चक्ररत्न उत्पन्न होने का उत्सव

बनाया। शस्त्रागार में से निकल कर, वह चक्र, पूर्व दिशा की ओर आकाश में स्थित हुआ। तब महाराजा शान्तिनाथ, सेना सहित पूर्व की ओर चले। अनेक देशों को विजय करके समुद्र की पूर्व सीमा पर मागध देव को, दक्षिण सीमा पर वरदाम देव को, पश्चिम सीमा पर प्रभास देव को, अपने आज्ञाकारी की भाँति नियुक्त करके, महाराजा शान्तिनाथ, सिन्धु देवी को लक्ष्य बना सिन्धु नदी की ओर पधारे। सिन्धु देवी ने, भगवान् को भेंट रखकर, भगवान् की आधीनता स्वीकार की। तब भगवान् शान्तिनाथ, वैताढ्य गिरि की ओर पधारे। इस प्रकार छः खण्ड पृथ्वी साथ, चौदह रत्न, नवनिधि, बत्तीस सहस्र देशाधिपति मुकुटधारी राजा, चौंसठ सहस्र रानियाँ, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख रथ और छयान्वे कोटि पैदल आदि चक्रवर्ती की समस्त ऋद्धि सहित भगवान् शान्तिनाथ, आठ सौ वर्ष में हस्तिनापुर को लौटे। हस्तिनापुर में, मन्त्रीगण आदि, दीर्घकाल से महाराजा शान्तिनाथ की प्रतीक्षा कर रहे थे, अतः पुरजन परिजन आदि ने, महाराजा शान्तिनाथ का बहुत स्वागत किया। महाराजा शान्तिनाथ राजभवन में पधारे। वहाँ देवों तथा देशाधिपति मुकुटधारी राजाओं ने मिलकर, भगवान् शान्तिनाथ को चक्रवर्ती पद पर अभिषिक्त किया। हस्तिनापुर में, बारह वर्ष तक एक बड़ा महोत्सव हुआ। महोत्सव काल में, प्रजा कर औ

रण में भी मुक्त रहा ।

छः खण्ड के स्वामी भगवान् शान्तिनाथ ने, चौबीस सहस्र दो सौ वर्ष तक, चक्रवर्ती पद का उपभोग किया। इनके एक लक्ष बानवे हजार रानियाँ थीं और डेढ करोड़ पुत्र थे।

एक दिन भगवान शान्तिनाथ, आत्मचिन्तन कर रहे थे, उसी समय लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की। कि—हे प्रभो, यद्यपि आप स्वयंबुद्ध हैं, परन्तु हम परम्परा के अनुसार यह प्रार्थना करने के लिए उपस्थित हुए हैं, कि अब आप धर्मचक्री होकर, त्रिलोक में धर्मशासन प्रवर्ताइये। लोकान्तिक देव यह प्रार्थना करके ब्रह्मलोक को चले गये, तब अचिरानन्दन भगवान शान्तिनाथ ने, राज्य-भार अपने पुत्र चक्रायुद्ध को सौंप दिया और वार्षिक दान देने लगे।

वार्षिकदान समाप्त होने पर, इन्द्र तथा देव देवी, भगवान का निष्क्रमणोत्सव करने के लिए हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। स्नानादि से निवृत हो, शरीर पर वस्त्राभूषण धार के भगवान शान्तिनाथ सर्वार्थ–शिविका में बैठे; जयजयकार सहित नगर के मध्य होते हुए सहस्राम्र बाग में पधारे। वहाँ, सब वस्त्रालंकार त्याग, एक सहस्र राजपरिवार के पुरुषों सहित भगवान ने, ज्येष्ठ कृष्णा १४ को छट्ठ के तप में, सर्वविरति चारित्र-स्वीकार किया। चारित्र स्वीकार करते ही भगवान को मनःपर्यय

ज्ञान हुआ। भगवान, हस्तिनापुर से विहार कर गये। दूसरे दिन हरिपुर में सुमित्र राजा के यहाँ, परमान्न से भगवान का पारणा हुआ। इस परम दान की महिमा बताने के लिए, देवों ने, पाँच दिव्य प्रकट किये।

संग एवं ममत्व रहित, भगवान शान्तिनाथ, जनपद में विचरने लगे। एक वर्ष पश्चात् भगवान, हस्तिनापुर के उसी सहस्राम्र बाग में पधारे। वहाँ, दधि के तप में नन्दी वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो भगवान ने, घातिक कर्मों का क्षय कर डाला, तब भगवान को अनन्त केवलज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त हुए। भगवान को केवलज्ञान होते ही त्रिलोक में प्रकाश हुआ। आसन कम्पादि से अवधिज्ञान द्वारा भगवान को केवलज्ञान हुआ जानकर इन्द्रादि देव भगवान की सेवा में उपस्थित हुए। समवशरण की रचना हुई, जिसमें द्वादश प्रकार की परिषद् एकत्रित हुई। भगवान शान्तिनाथ ने, भव-भ्रमण के कष्ट से संतप्त लोगों को अमृत के समान सुखदायिनी वाणी का प्रकाश किया।

भगवान की वाणी श्रवण करके हस्तिनापुर के महाराजा चक्रायुध, परम वैराग्यवन्त होकर भगवान से प्रार्थना करने लगे—हे प्रभो, मैं जन्म मरण के कष्ट से व्यथित हूँ, अतः शरण ग्रहण करना चाहता हूँ। आप मुझे अपनी शरण

में स्थान दीजिये; मैं दीक्षा लेने का अभिलाषी हूँ। चक्रायुध की प्रार्थना सुनकर भगवान ने उत्तर दिया कि तुम्हें जैसा सुख हो, अविलम्ब वैसा करो, प्रमाद मत करो।

महाराजा चक्रायुध नगर में आये। उन्होंने अपने पुत्र कुरुचन्द्र को राज्याभिषेक किया और अन्य पैंतीस राजाओं के साथ, भगवान के समीप संयम स्वीकार किया। भगवान ने, इन्हें—चक्रायुध आदि को—उत्पाद व्यय और ध्रुव इस त्रिपदी का उपदेश किया, जिससे इन मुनियों ने द्वादशांगी की रचना की और भगवान के गणधर हुए।

अचिरानन्दन भगवान शान्तिनाथ, एक वर्ष कम पचीस सहस्त्र वर्ष केवली पर्याय में विचरते रहे और अनेक भव्य जीवों का उद्धार किया। इनके बासठ सहस्त्र मुनि, इकसठ सहस्त्र छः सौ आर्यिका, दो लाख नब्बे हजार श्रावक और तीन लाख न्यान्वे हजार श्राविकाएँ हुईं। अपना निर्वाण काल समीप जान कर भगवान शांतिनाथ, नव सौ मुनियों सहित सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहाँ, सब ने अनशन कर लिया, जो एक मास तक चलता रहा। अंत में, ज्येष्ठ कृष्णा १३ को—जब चन्द्रका योग भरिणी नक्षत्र में हुआ—भगवान ने चार अघातिक कर्म नष्ट करके सिद्ध पद प्राप्त किया।

भगवान शान्तिनाथ, पच्चीस हजार वर्ष कुमार पद पर

पच्चीस हजार वर्ष माण्डलिक राजा रहे और पच्चीस हजार वर्ष चक्रवर्ती पद का उपभोग किया। फिर संयम लेकर एक वर्ष छद्मस्थावस्था में शेष केवली पर्याय में विचरते रहे। इस प्रकार भगवान, सब एक लाख वर्ष का आयुष्य भोग कर, भगवान धर्मनाथ के निर्वाण को पौन पल कम तीन सागरोपम बीत जाने के पश्चात् निर्वाण पधारे।

—○—

## प्रश्न:—

१—भगवान शान्तिनाथ के कितने भव का हाल जानते हो ?

२—भगवान शान्तिनाथ ने, किस भव में किस कार्य द्वारा तीर्थंकर गोत्र बाँधा था ?

३—भगवान शान्तिनाथ के समस्त पूर्व भवों में, सब से अधिक आदर्श कार्य कौनसा है ?

४—भगवान शान्तिनाथ, अचिरामाता के गर्भ में कहाँ से और कितना आयुष्य भोग कर पधारे थे ?

५—भगवान की जन्म तिथि कौन सी है और इनका नाम शान्तिनाथ, किस घटना के कारण हुआ ?

६—भगवान शान्तिनाथ का गार्हस्थ्य जीवन कितने भागों में किस-किस प्रकार व्यतीत हुआ ?

७—भगवान शान्तिनाथ ने इस भव और पूर्व भवों में श्लाघ्य पुरुषों में की कौन-कौन पदवियें पाई हैं ?

८—भगवान शान्तिनाथ और भगवान अनन्तनाथ के निर्वाण में कितने काल का अंतर रहा ?



# कर्म प्रकृति का थोकड़ा ।

## आठ कर्मों के नाम और प्रकृति ।

आठ कर्मों के नाम—(१) ज्ञानावरणीय (२) दर्शनावरणीय (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र (८) अन्तराय ।

## कर्मों की उत्तर प्रकृतियां

आठ कर्मों की १४८ प्रकृतियाँ हैं। वे इस प्रकार— ज्ञानावरणीय की पाँच ५, दर्शनावरणीय की नौ ९, वेदनीय की दो २, मोहनीय की अट्ठाईस २८, आयु कर्म की चार ४, नाम ※ कर्म की तराणवें ९३, गोत्र कर्म की दो २, और अन्तराय की पांच ५। कुल १४८ प्रकृतियाँ हुई ।

※ नाम कर्म के विशेष विवक्षा से १०३ भेद भी होते हैं जिससे १५८ प्रकृतियाँ भी मानी जाती हैं ।

# प्रकृतियों के नाम

१ ज्ञानावरणीय की प्रकृतियाँ—(१) मतिज्ञानावरणीय (२) श्रुतज्ञानावरणीय (३) अवधिज्ञानावरणीय (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीय (५) केवलज्ञानावरणीय ।

२ दर्शनावरणीय की प्रकृतियाँ—(१) निद्रा (२) निद्रानिद्रा (३) प्रचला (४) प्रचलाप्रचला (५) स्त्यानगृद्धि (६) चक्षुदर्शनावरण (७) अचक्षुदर्शनावरण (८) अवधिदर्शनावरण (९) केवलज्ञानावरण ।

(३) वेदनीय की दो प्रकृतियाँ—असातावेदनीय और सातावेदनीय ।

---

१ जिस ज्ञान का जो आवरण करे ( रोके ) उसे उसी ज्ञान का आवरण रूप प्रकृति बताई है ।

२ सुख से सोवे सुख से जागे उसे निद्रा कहते हैं । सुख से सोये दुःख से जागे उसे निद्रा निद्रा कहते हैं । बैठे २ निद्रा आ जावे उसे प्रचला कहते हैं । चलते फिरते निद्रा आ जावे उसे प्रचला-प्रचला कहते हैं । जिस निद्रा के उदय से जागृत अवस्था में सोचा हुआ कार्य सुषुप्त अवस्था में कर डाले उसे स्त्यानगृद्धि निद्रा कहते हैं । इस निद्रा में यदि मृत्यु हो जावे और पहले आयुष्य, दूसरी गति का न बांधा हो तो नरक में ही जाता है ।

३ जिसके संयोग मिलने से आत्मा, सुख का अनुभव करे, उसे सातावेदनीय और दुःख का अनुभव करे उसे असातावेदनीय कहते हैं ।

४ मोहनीय कर्म की प्रकृतियाँ—मोहनीय कर्म के मुख्य दो भेद हैं-(१) दर्शनमोहनीय (२) चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ हैं-मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व (मिश्र) और सम्यक्त्वमोहनीय। चारित्र मोहनीय के दो भेद हैं-कषाय मो० और नोकषाय मो०। कषाय मो० के सोलह भेद हैं-अनन्तानुबन्धी का (१) क्रोध (२) मान (३) माया (४) लोभ, अप्रत्याख्यानावरण का (५) क्रोध (६) मान (७) माया (८) लोभ, प्रत्याख्यानावरण का (९) क्रोध (१०) मान (११) माया (१२) लोभ संज्वलन का (१३) क्रोध (१४) मान (१५) माया (१६) लोभ। नोकषाय[1] के नौ भेद हैं—१ हास्य २ रति ३ अरति ४ भय ५ शोक ६ जुगुप्सा ७ स्त्रीवेद ८ पुरुषवेद ९ नपुंसकवेद। ये सब मिल कर अट्ठाईस भेद होते हैं।

५ आयु कर्म की प्रकृतियाँ—१ नरकायु २ तिर्यञ्चायु ३ मनुष्यायु ४ देवायु।

६ नाम कर्म की प्रकृतियाँ—४ चार गति (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव), ५ जाति (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय), ५ शरीर (औदारिक, वैक्रिय,

१ हास्य आदि कषायों को उत्तेजित करते हैं और उनके सहचारी हैं इसलिए [illegible]) कषाय कहते हैं किन्तु यह भी कषाय ही

आहारक, तैजस, कार्मण) ३ अंगोपांग (औदारिक, वैक्रिय, आहारक) ५ बन्धन (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण) ५ संघातन (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण) ६ संस्थान (समचतुरंस, न्यग्रोधपरिमंडल, सादि, कुब्जक, वामन, हुण्डक) ६ संहनन (वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक, सेवार्त), ५ वर्ण (कृष्ण, नील, पीत, रक्त, सफेद) २ गन्ध (सुगंध, दुर्गन्ध) ५ रस (खट्टा, मीठा, कड़वा, कसायला, तीखा) ८ स्पर्श (हलका, भारी, ठण्डा, गर्म, रूखा, चिकना, कठोर, कोमल) ४ आनुपूर्वी (नरक तिर्यञ्च, मनुष्य, देवता) १ अगुरुलघु १ उपघात १ पराघात १ आतप १ उद्योत २ विहायोगति (शुभ-मनोज्ञ, अशुभ—अमनोज्ञ) १ उच्छ्वास १ त्रस १स्थावर १ बादर १ सूक्ष्म १ पर्याप्त १ अपर्याप्त १ प्रत्येक १ साधारण १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ सुभग १ दुर्भग १ सुस्वर १ दुःस्वर, १ आदेय १ अनादेय १ यशःकीर्ति १ अयशःकीर्ति १ तीर्थंकर १ १ निर्माण। ये तेरानवे प्रकृतियाँ नाम कर्म की हैं। इनमें निम्न लिखित दस और बढ़ा देने से १०३ हो जाती हैं:—

१ औदारिक वैक्रिय बंधन, २ औदारिक आहारक

बन्धन, ३ औदारिक तैजस बंधन, ४ औदारिक कार्मण बन्धन, ५ वैक्रिय औदारिक बन्धन, ६ वैक्रिय तैजस बन्धन, ७ वैक्रिय कार्मण बन्धन, ८ अहारक तैजस बन्धन, ९ आहारक कार्मण बन्धन, १० तैसज-कार्मण बन्धन, ये एक सौ तीन प्रकृतियां हुईं।

७ गोत्र-कर्म की प्रकृतियाँ—१ उच्चगोत्र, २ नीचगोत्र।

८ अन्तराय की प्रकृतियाँ—१ दानान्तराय, २ लाभान्तराय, ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय, ५ वीर्यान्तराय।

## कर्म बन्ध के कारण और फल

(१) ज्ञानावरणीय कर्म छः प्रकार से बँधता है और दश प्रकार से भोगना पड़ता है—१ ज्ञानी का अवर्णवाद करे—अवगुण निकाले, २ ज्ञानी की निन्दा करे और उनका उपकार न माने, ३ ज्ञान में अन्तराय डाले, ४ ज्ञान या ज्ञानी की आसातना करे, ५ ज्ञानी से द्वेष करे, ६ ज्ञानी के साथ खोटा विसंवाद करे।

इस कर्म का फल दस प्रकार का है—१ श्रोत्रेन्द्रिय का आवरण, २ चक्षुरेन्द्रिय का आवरण, ३ घ्राणेन्द्रिय का आवरण, ४ रसनेन्द्रिय का आवरण, ५ स्पर्शेन्द्रिय का [illegible] ज्ञान का आवरण, ७ श्रुत ज्ञान

८ अवधि ज्ञान का आवरण, ९ मनःपर्यय ज्ञान का आवरण, १० केवल-ज्ञान का आवरण।

( २ ) दर्शनावरणीय कर्म छः प्रकार से बँधता है—१ सुदर्शनी का अवर्णवाद बोले, २ सुदर्शनी की निन्दा करे या उपकार भूले, ३ सम्यक्त्व प्राप्ति में अन्तराय डाले, ४ सुदर्शनी की आसातना करे, ५ सुदर्शनी से द्वेष करे, ६ सुदर्शनी के साथ विसंवाद करे।

इस कर्म के फल नौ प्रकार के हैं १ निद्रा, २ निद्रा-निद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला ५ स्त्यानगृद्धि ६ चक्षुदर्शनावरण, ७ अचक्षुदर्शनावरण, ८ अवधिदर्शनावरण ९ केवलदर्शनावरण।

( ३ ) वेदनीय कर्म २२ प्रकार से बंधता है जिसके दो भेद हैं। सातावेदनीय और असातावेदनीय।

साता वेदनीय दस प्रकार से बँधता है—१ प्राण (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ) पर दया, अनुकम्पा करे, २ भूत (वनस्पति) पर अनुकम्पा करे, ३ जीव (पंचेन्द्रिय) पर अनुकम्पा करे, ४ सत्व (चार स्थावरों) पर अनुकम्पा करे, ५ उक्त जीवों को दुःख न देवे, ६ शोक न करावे, ७ झुरावे नहीं, ८ टप टप आँसू न गिरावे, (रुलावे नहीं) ९ मारे नहीं, १० परितापना न उपजावे।

इस कर्म का फल आठ प्रकार का है—१ मनोहर शब्द, २ मनोहर रूप, ३ मनोहर गंध, ४ मनोहर रस, ५ मनोहर स्पर्श, ६ मनचाहा सुख, ७ अच्छे वचन, ८ शारीरिक सुख ❀ ।

असाता वेदनीय बारह प्रकार से बँधता है—१ प्राण, भूत, जीव, सत्व को दुःख देना, २ शोक कराना, ३ झुराना, ४ रुलाना, ५ मारना पीटना, ६ परितापना उत्पन्न करना, ७ बहुत दुख देना, ८ बहुत शोक कराना, ९ बहुत झुराना, १० बहुत रुलाना, ११ बहुत मार-पीट करना, १२ बहुत परितापना करना ।

इसका फल आठ प्रकार का है—१ अमनोज्ञ शब्द, २ अमनोज्ञ रूप, ३ अमनोज्ञ गंध ४ अमनोज्ञ रस, ५ अमनोज्ञ स्पर्श, ६ अमनोज्ञ मन, ७ अमनोज्ञ वचन, ८ अमनोज्ञ काय † ।

४ मोहनीय कर्म छः प्रकार से बँधता है—१ तीव्र क्रोध करना, २ तीव्र मान करना, ३ तीव्र माया करना,

---

❀ मनोहर शब्द आदि का मतलब यह है कि शब्दादिक पाँचों संयोग दुसरों के द्वारा मिले और उनसे अपने को आनन्द प्राप्त हो यह सातावेदनीय का उदय जानना ।

† इसी प्रकार शब्दादिक संयोग से दुख होना असातावेदनीय जानना ।

४ तीव्र लोभ करना, ५ तीव्र दर्शन मोहनीय, ६ तीव्र चारित्र मोहनीय।

यह कर्म अट्ठाईस प्रकार से भोगा जाता है—ये अट्ठाईस प्रकार वही हैं जो प्रकृतियों में गिनाये जा चुके हैं। उनमें से अनन्तानुबंधी चौकड़ी का लक्षण इस प्रकार है।

(१) जैसे पत्थर में लकीर (दराज) करने से वह मिट नहीं सकती है अथवा पर्वत के फटने से जो दरार होती है, उसका मिलना जितना कठिन है उसी प्रकार जो क्रोध शान्त न हो वह अनन्तानुबन्धी क्रोध है। जैसे पत्थर का खंभ नहीं नमता, वैसे ही जो मान दूर न हो उसे अनन्तानुबंधी मान कहते हैं। जैसे बिलकुल टेढ़ी मेढ़ी कठिन बांस की जड़ का गठीलापन मिट नहीं सकता है, उसी प्रकार की जो माया हो उसे अनन्तानुबंधी माया कहते हैं। जैसे किरमची रंग का छूटना दुष्कर है उसी प्रकार जो लोभ छूट न सके उसे अनन्तानुबंधी लोभ कहते हैं।

इस चौकड़ी से नरक गति में जाना पड़ता है। स्थिति यावत्जीवन की है और सम्यक्त्व का घात करती है।

(२) अप्रत्याख्यानावरण का लक्षण—पानी सूखने से तालाब में जो दरार फट जाती है वह आगामी वर्ष वर्षा होने पर मिटती है। इसी प्रकार जो क्रोध विशेष परिश्रम

से शान्त हो उसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध कहते हैं। हाथी दाँत के खंभ की तरह जो बड़ी मुश्किल से नमे वह अप्रत्याख्यान मान है। मेंढ़े के सींग की तरह जो कठिनाई से मिटे उसे अप्रत्याख्यान माया कहते हैं। जो लोभ गाड़ी के ओंगन की तरह अति कष्ट से छूटे वह अप्रत्याख्यान लोभ है।

इस चौकड़ी से तिर्यञ्च की गति होती है। इसकी स्थिति बारह महीने की है। यह एक देश संयम का घात करती है।

(३) प्रत्याख्यानावरण चौकड़ी का लक्षण—जैसे रेत में खींची हुई लकीर बहुत काल तक नहीं रहती, इसी प्रकार जो क्रोध बहुत न ठहरे उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहते हैं। बेंत के खम्भे की तरह जिस मान को दूर करने के लिए बहुत अधिक श्रम न करना पड़े उसे प्रत्याख्यानावरण मान कहते हैं। चलता बैल मूतता है तो टेढ़ी लकीरें हो जाती हैं, उनका मिटना अति कष्ट साध्य नहीं है उसी प्रकार जिस माया का मिटना ऐसा कठिन न हो उसे प्रत्याख्यानावरण माया कहते हैं। दीपक के कोरे कज्जल की तरह जो लोभ कुछ ही कठिनाई से छूटे उसे प्रत्याख्यानावरण लोभ कहते हैं। इससे चारों गतियों का बन्ध हो सकता है। परन्तु प्रायः मनुष्य गति का बंध होता है, स्थिति चार महीने की है। यह सकल संयम का

(४) संज्वलन चौकड़ी का स्वरूप—पानी में खींची हुई लकीर की तरह जो क्रोध शीघ्र ही शान्त हो जाता है वह संज्वलन क्रोध है। जो मान तिनके की तरह शीघ्र ही नम जाय उसे संज्वलन मान कहते हैं। बांस का छिलका जैसे सरलता से सीधा किया जा सकता है उसी प्रकार जो माया विना विशेष श्रम के दूर हो जाय उसे संज्वलन माया कहते हैं। हल्दी के रंग की तरह जो सहज ही छूट जाय उसे संज्वलन लोभ कहते हैं।

इस चौकड़ी से देव गति होती है। स्थिति क्रोध की दो महीने की, मान की एक महीने की, माया की पन्द्रह दिन की और लोभ की अन्तर्मुहूर्त की है। यह कषाय यथाख्यात चारित्र का घात करती है।

ये सोलह भेद कषाय के और पूर्वोक्त नव नोकषाय के, इस प्रकार पचीस प्रकार से चारित्र मोहनीय भोगा जाता है।

दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियाँ हैं। ये, सम्यक्त्व के गुणों को पूर्ण प्रगट नहीं होने देतीं।

(५) आयु कर्म सोलह प्रकार से बँधता है—(१) महाआरम्भ करने से, (२) महापरिग्रह (ममत्व) से, (३) पंचेन्द्रिय की घात करने से, (४) मद्य-मांस का सेवन करने से नरकायु का, (५) माया करने से,

(६) गूढ़ माया करने से, (७) असत्य बोलने से, (८) कम ज्यादा नापने तोलने से तिर्यञ्चायु का, (९) प्रकृति की भद्रता से, (१०) विनीतता से, (११) दया भाव रखने से (१२) मद मत्सरता आदि से रहित होने से मनुष्य का, (१३) सराग संयम पालने से, (१४) देश-संयम पालने से, (१५) बाल तपस्या करने से, (१६) अकाम निर्जरा करने से देवायु का बंध होता है। चार प्रकार से भोगा जाता है-१ नरक आयु, २ तिर्यञ्च आयु, ३ मनुष्य आयु, ४ देव आयु।

(६) नाम कर्म आठ प्रकार से बंधता है और अट्ठाईस प्रकार से भोगा जाता है। नाम कर्म दो प्रकार का-है-१ शुभनाम कर्म, २ अशुभनाम कर्म।

शुभ नाम कर्म चार प्रकार से बँधता है—१ काय की सरलता, २ वचन की सरलता ३ मन की सरलता, ४ विसंवाद रहित। चौदह प्रकार से भोगा जाता है-१ इष्ट शब्द, २ इष्टरूप, ३ इष्ट गंध, ४ इष्ट रस, ५ इष्ट स्पर्श, ६ इष्ट गति ७ इष्ट स्थिति, ८ इष्ट लावण्य, ९ इष्ट यशः कीर्ति, १० इष्ट उट्ठाण (उत्थान) कम बल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम, ११ इष्ट स्वर, १२ कान्त स्वर, १३ प्रिय स्वर १४ मनोज्ञ स्वर ❀।

❀ ये [illegible] अपने समझने चाहिये।

अशुभ नाम कर्म चार प्रकार से बँधता है—१ काय की वक्रता ( बाँकापन ), २ वचन की वक्रता, ३ मन की वक्रता, ४ विसंवाद सहित । चौदह प्रकार से भोगा जाता है—१ अनिष्ट शब्द, २ अनिष्ट रूप, ३ अनिष्ट गंध, ४ अनिष्ट रस, ५ अनिष्ट स्पर्श, ६ अनिष्ट गति, ७ अनिष्ट स्थिति ८ अनिष्ट लावण्य ९ अनिष्ट यशःकीर्ति १० अनिष्ट उट्ठाण ( उत्थान ) क्रम बल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम, ११ हीन स्वर, १२ दीन स्वर, १३ अप्रिय स्वर, १४ अमनोज्ञ स्वर।

(७) गोत्र कर्म सोलह प्रकार से बँधता है और सोलह प्रकार से भोगा जाता है। इसके दो भेद हैं—१ उच्चगोत्र २ नीच गोत्र।

उच्च गोत्र आठ प्रकार से बंधता है—

१ जाति[1] का मद ( घमण्ड ) न करना, २ कुल[2] का मद न करना, ३ बल का मद न करना, ४ रूप का मद न करना, ५ तपस्या का मद न करना, ६ श्रुत ( ज्ञान ) का मद न करना, ७ लाभ का मद न करना, ८ ऐश्वर्य का मद न करना। यह उच्च गोत्र आठ प्रकार से भोगा जाता है अर्थात् इन आठ का मद न करे तो उच्च गोत्र पाता है।

[1] मातृपक्ष को जाति कहते हैं।

[2] पितृपक्ष को कुल कहते हैं।

नीच गोत्र कर्म आठ प्रकार से बंधता है और आठ प्रकार से भोगा जाता है—

पूर्वोक्त जाति कुल, बल, रूप, तप, श्रुत, लाभ, ऐश्वर्य का घमण्ड करने से बँधता है और इनका घमण्ड करने से नीच गोत्र की प्राप्ति होती है। यह आठ प्रकार से भोगा जाता है।

(८) अन्तराय कर्म पाँच प्रकारसे बँधता है और पाँच प्रकार से भोगा जाता है अर्थात् दान, लाभ, भोग, उपभोग, और वीर्य में अन्तराय डालने से बँधता है और इससे पाँचों अन्तरायों की प्राप्ति होती है।

## कर्मों की स्थिति और अबाधा[1] काल

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय की ज० स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उ० तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। अबाधा काल तीन हज़ार वर्ष का है। साता वेदनीय की ज० स्थिति दो समय की और उ० पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागर की है। अबाधा काल डेढ़ हज़ार वर्ष का है। असाता वेदनीय की ज० स्थिति एक सागर के सात

---

१ कर्मबन्ध होने के प्रथम समय से लेकर जब तक उस कर्म का उदय या उदीरणा नहीं होती तब तक के काल को अबाधा काल कहते हैं।

भागों में के तीन भाग, जिनमें पल्योपम के असंख्यातवें भा कम की और उ० तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है इसका अबाधा काल तीन हज़ार वर्ष का है। मोहनी कर्म की ज० स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उ० सित्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। अबाधा काल सात हज़ार व का है। नारकी तथा देवों के आयु कर्म की स्थिति ज० दस हज़ार वर्ष की उ० तेंतीस सागरोपम की, मनुष्य औ तिर्यञ्च के आयु कर्म की ज० स्थिति अन्तर्मुहूर्त की, उ० करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक तीन पल्योपम की नाम कर्म की ज० स्थिति आठ मुहूर्त की उ० बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की और अबाधा काल दो हज़ार वर्ष क है। गोत्र कर्म की ज० स्थिति आठ मुहूर्त की उ० बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की तथा अबाधा काल दो हज़ार वर्ष का है।

---

☞ इन आठ कर्मों की प्रकृतियों के बन्ध का वर्णन श्री भगवती सूत्र के आठवें शतक के नवमें उद्देश्य में और भोगवने की प्रकृतियों का वर्णन श्री प्रज्ञापना सूत्र के तेईसवें पद में है।

# भगवान श्री मल्लिनाथ

## प्रार्थना



श्लोक—

श्री मल्लिनाथ शमथ द्रुम सेकपाथः
कान्त प्रियंगु रुचिरोचित काय तेजः ।
पादाब्ज मस्तु मदनार्ति मधौ विमुक्ता,
कान्त ! प्रियंगु रुचिरोचित काय तेजः ॥

भावार्थ—जिनके चरण कमल शान्ति रूपी वृक्ष को सींचने में अमृत समान हैं, जिनका शरीर प्रियंगुलता के समान सुन्दर है और जो कामदेव रूपी मधु दैत्य के लिए कृष्ण के समान घोर हैं, ऐसे हे मल्लिनाथ प्रभु ! आपके चरण कमल की सेवा मुझे प्राचीन और उचित सुख के लिए हो ।

महाबल मुनि ने, माया सहित किये हुए तप की आलोचना नहीं की, इससे स्त्री वेद कर्म अविच्छिन्न रहा। इस घटना से यह शिक्षा मिलती है कि, धर्म-करणी चाहे कम की जाय या ज्यादा, परन्तु हो कपट-रहित शुद्ध हृदय से। कपट सहित अधिक की गई धर्म-करणी भी, दुःखदायिनी हो जाती है। शास्त्रकार कहते हैं, कि 'माई मिच्छादिट्ठी अमाई समदिट्ठी।' अर्थात् कपटी ही मिथ्यादृष्टि है और निष्कपटी ही समदृष्टि है। कपटी का जप तप नियम प्रत्याख्यान श्रावकपना और साधुपना भी, अंक रहित बिन्दियों के समान हो जाता है। आज कल जितना लक्ष्य हिंसा अहिंसा और आरम्भ समारम्भ के कार्यों प्रति दिया जाता है, सत्य और सरलता के प्रति नहीं दिया जाता। बात २ में असत्याचरण किया जाता है और उसे सत्य सिद्ध करने के लिए माया का आश्रय लिया जाता है जैसे माया का कोई पाप ही न हो। ऊपर से यह मानते हैं कि हम बड़े चतुर हैं जो काम भी बना लेते हैं और प्रतिष्ठा भी बनाई रखते हैं परन्तु यह चरित्र सिद्ध करता है कि माया (कपट) ही भयंकर पाप है। अतः बुद्धिमानों को कपटभाव त्याग, सरल व शुद्ध हृदय से ही धर्म करना उचित है।

चरित्र से ज्ञात होता है, कि महाबल मुनि का भावी आयुष्य कपट सहित तप करने से पूर्व ही बंध चुका था, अन्यथा कपटी का शुभ आयुष्य नहीं बंधता। थोड़े से दोष की भी आलोचना

इच्छा को पूर्ण की। गर्भकाल समाप्त होने पर, मार्गशीर्ष शुक्ल ११ को जब चन्द्र अश्विनी नक्षत्र में आया, महारानी प्रभावती ने उन्नीसवें तीर्थंकर को पुत्री के रूप में प्रसव किया। भगवान के शरीर पर, मुख्य चिन्ह कुम्भ कलश का था और भगवान अपनी कान्ति से नीलमणि की प्रभा को भी हरण करते थे। भगवान के जन्म लेते ही त्रिलोक में उद्योत हुआ और नारकीय जीवों को भी शान्ति मिली।

आसनकम्प से तीर्थंकर का जन्म हुआ जान छप्पन दिक्कुमारियों, और देवताओं सहित इन्द्रों ने यथा स्थान उपस्थित होकर भगवान का जन्म कल्याण मनाया। जन्म कल्याण मना कर भगवान को माता के पास पधरा गये और वे अपने-अपने स्थान गये।

भगवान जब गर्भ में थे, तब महारानी प्रभावती की इच्छा, मालती-पुष्प की शैया पर शयन करने की हुई थी। इस बात को दृष्टि में रख कर, भगवान के माता-पिता ने भगवान का नाम

---

* भगवान तीर्थंकर, वैसे तो पुरुष रूप में ही अवतीर्ण होते हैं, परन्तु अपवाद स्वरूप स्त्रीरूप में भी अवतीर्ण हो जाते हैं। ऐसे अपवाद को लोक प्रवृत्ति में आश्चर्य मानते हैं। अवसर्पिणी काल में होने वाले दस आश्चर्यों में से, उन्नीसवें तीर्थंकर का स्त्री रूप में अवतीर्ण होना भी एक आश्चर्य माना गया है। —लेखक

मल्लिकुमारी रखा। धात्रियों द्वारा लालन-पालन पाते हुए बढ़कर भगवान ने युवावस्था में प्रवेश किया। उस समय भगवान के पचीस धनुष ऊँचे और नीलमणि की कान्ति को हरण करने वाले शरीर का रूप लावण्य, स्वर्ग की अप्सराओं को भी शर्माता था।

भगवान के पूर्व भव के मित्र भी, जयन्त विमान का आयुष्य भोग कर भगवान से पूर्व ही इसी भरतार्द्ध में, भिन्न-भिन्न देश के राजाओं के यहाँ जन्मे और वयस्क होकर राज्य करने लगे थे। अचल का जीव, साकेतपुर ( अयोध्या ) का प्रतिबुद्ध राजा हुआ। धरण का जीव, चम्पानगरी का चन्द्रछाय राजा हुआ। पूरन का जीव, श्रावस्ती नगरी का रुक्मी राजा हुआ। वसु का जीव, वाराणसी नगरी का शंख राजा हुआ। वैश्रवण का जीव, हस्तिनापुर का अदीनशत्रु राजा हुआ और अभिचंद्र का जीव, कम्पिलपुर का जित-शत्रु राजा हुआ।

इन छहों राजाओं ने किसी न किसी प्रसंग से विदेहराज कुम्भ की कन्या भगवान मल्लि के उत्कृष्ट रूप लावण्य की प्रशंसा सुनी। छहों राजाओं ने, अपने अपने दूत कुम्भ राजा के पास भेजे और कुम्भराजा से मल्लिकुमारी की याचना कराई। इधर भगवान मल्लिनाथ ने अपने पूर्व भव के साथियों का हाल अवधिज्ञान द्वारा जान लिया कि इस समय वे कहाँ-कहाँ के राजा हैं। अपने पूर्व के मित्रों को प्रतिबोध देने के

लिए भगवान ने, अशोक वाटिका में एक मोहनगृह बनवाया मोहनगृह के मध्य में एक पीठिका (चबूतरा) बनवाकर भगवान ने उसके ऊपर अपने आकार की एक प्रतिमा खड़ी की। भगवान मल्लिनाथ के आकार की यह पुतली, स्वर्णमयी थी। उसके अधर, पद्मराग मणिमय थे। नीलमणि के केश थे। स्फटिक रत्न के लोचन थे। प्रवालमयी हाथ पाँव थे। उसका उदर पोला और छिद्र सहित था। उसके तालु में भी एक छिद्र था, जिसका मुख मस्तक पर था। मस्तक का एक कमलाकार स्वर्णमयी ढक्कन था। जो मुकुट की भाँति बना हुआ था। देखने में वह पुतली, साक्षात् मल्लिकुमारी ही जान पड़ती थी।

जिस रत्नमयी पीठिका पर यह पुतली थी, उसके चारों ओर छः द्वार वाली दीवाल बनवाई। द्वार इस प्रकार रखे कि एक द्वार से प्रवेश करके पुतली के सन्मुख पहुँचा हुआ व्यक्ति दूसरे द्वार से प्रवेश करके पुतली के सामने पहुँचे हुए व्यक्ति को न देख सके। एक मार्ग, पुतली की पीठ की ओर रखा, जिससे पुतली के समीप पहुँच सके। इस प्रकार कलामय गृह और पुतली बनवा कर भगवान मल्लिनाथ, भोजन करने के समय एक एक ग्रास भोजन-सामग्री नित्य प्रति उस पुतली में डालने लगे। मस्तक पर रहे हुए छिद्र द्वार से, भगवान, पुतली के उदर में ग्रास डाल देते और फिर ढक्कन बंद कर देते।

छहों राजाओं के दूत, योगायोग से कुम्भराजा के दरबार में एक ही साथ पहुँचे। छहों दूतों ने शिष्टाचार-पूर्वक कुम्भराजा से मल्लिकुमारी की * याचना की। महाराजा कुम्भ ने, दूतों का अपमान करते हुए यह उत्तर दिया, कि यह कन्या त्रैलोक्य की मुकुटमणि है, मनुष्य तो क्या, देवलोक के इन्द्र भी इसके पति बनने योग्य नहीं हैं, तो फिर किसी पुरुष को इस कन्या को वरने की इच्छा रखना व्यर्थ है। अतः तुम मेरे दरबार से चले जाओ। इस प्रकार अपमान करके कुम्भराजा ने, छहों राजा के दूतों को अपने यहाँ से निकाल दिया। निराश और अपमानित होकर छहों दूत अपने अपने राजा के यहाँ लौट गये और कुम्भराजा का उत्तर एवं व्यवहार अपने-अपने राजा को, कह सुनाया। कुम्भराजा के उत्तर और दूत के प्रति किये गये व्यवहार ने, राजाओं की क्रोधाग्नि को भड़का दिया। छहों राजाओं ने आपस में सलाह करके अपमान का बदला लेने के लिए सम्मिलित बल से कुम्भराजा पर चढ़ाई कर दी। छहों राजा की सेना ने चारों ओर से, मिथिला को घेर लिया। कुम्भराजा ने, शत्रुसेना को परास्त करने के लिए युद्ध भी किया, परन्तु विजय

* सकपट और निष्कपट करणी का प्रत्यक्ष अन्तर यह है कि जो बड़े थे, वे लौकिक व्यवहार में स्त्रीरूप हैं और जो छोटे थे, वे पुरुष बनकर [illegible] हैं अभिलाषा कर रहे हैं।

न मिली और मिथिला के चारों ओर पड़े हुए घेरे को नष्ट न कर सके। विवश होकर उन्हें नगर में ही बन्द रहना पड़ा।

कुम्भराजा, शत्रुसेना से किस प्रकार रक्षा हो, इसी चिन्ता में पड़े हुए थे, इतने ही में भगवान् मल्लिनाथ, पिता को वन्दन करने के लिए गये। चिन्तामग्न पिता, भगवान मल्लिनाथ के प्रति कोई उचित व्यवहार न दर्शा सके, तब भगवान ने, अवधिज्ञान की शक्ति से सब कुछ जानते हुए भी, कुम्भ राजा से पूछा—पिताजी! आज आप इस प्रकार चिन्ता में क्यों पड़े हुए हैं? कुम्भराजा, भगवान को सब वृत्तान्त सुना कर कहने लगे कि कन्या किसी एक को दी जा सकती है, परन्तु इस समय छः राजा चढ़ाई करके आये हैं और नगर का घेरा डाले पड़े हैं, अंतः मैं किसे तो कन्या दूँ और किसे कन्या न दूँ। भगवान ने कहा—पिताजी, आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें, इन छहों राजाओं को समझाने का उपाय मैंने कर लिया है। आप प्रत्येक राजा के पास पृथक्-पृथक् दूत भेजकर छहों को, यह सूचना करा दीजिए, कि यदि आपको कन्या से ही प्रयोजन है, तो आप चुपचुप मेरे साथ चलिए। इस प्रकार छहों राजाओं को भिन्न-भिन्न रास्ते से लाकर, अशोकवाटिका में मेरे द्वारा बनवाये हुए मोहनघर में, अलग-अलग बैठा दीजिये। फिर तो मैं उन सभी को समझा दूँगी।

कुम्भराजा ने भगवान मल्लिनाथ के कथनानुसार छहों राजाओं को बुलवा कर मोहनघर में बैठाया। पीठिका-स्थित पुतली को मल्लिकुमारी मान कर छहों राजा, अपने-अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगे और विचारने लगे, कि पूर्व-पुण्य के योग से ही हमें ऐसी पत्नी मिलेगी। राजा लोग, अपने-अपने मन में इस प्रकार प्रसन्न हो रहे थे, इतने में छहों राजाओं का उद्धार करने के लिए, प्रतिमा के पीछे के मार्ग से भगवान मल्लिनाथ, प्रतिमा के समीप पधारे और पुतली के मस्तक पर लगा हुआ कमलाकार सोने का ढक्कन खोल दिया। भगवान को देखकर राजा लोग यह आश्चर्य कर रहे थे कि एक ही आकृति की दो युवतियाँ कैसे? इतने ही में पुतली के भीतर पड़ी हुई भोजन सामग्री से उत्पन्न घोर दुर्गन्ध ढक्कन खोलने से चारों ओर फैल गई। छहों राजा, उस दुर्गन्ध से घबराये और कपड़े से नाक दबा-दबा कर, मुँह फेर लिया। उसी समय भगवान बोले कि—आप लोगों ने मेरी ओर से मुँह क्यों फेर लिया? राजाओं ने उत्तर दिया, कि दुर्गन्ध से प्राण घबराते हैं। भगवान ने कहा—इस स्वर्णमयी पुतली में, केवल एक-एक ग्रास उत्तम भोजन का डाला गया है जो इस दशा में परिणित हुआ और इस की दुर्गंध आप से नहीं सही जाती, तो माता-पिता के रजवीर्य से बने हुए औदारिक शरीर की क्या स्थिति है, इसे क्यों नहीं विचारते? जो शरीर, रूप-रस,

रुधिर, मांस, चर्बी, अस्थि, मज्जा और वीर्य इन सात धातुओं से बना हुआ है, जो मल का खजाना है और जिसका साथ करने से उत्तम भोज्य पदार्थ और सुगंधित द्रव्य भी मल रूप बन जाते हैं, उस शरीर के केवल ऊपरी रंग को देखकर क्यों मोह में पड़ रहे हो ? अपने पूर्वभव पर ध्यान देकर, अपना कल्याण क्यों नहीं करते ।

भगवान का यह उपदेश सुन कर, छहों राजाओं को जातिस्मृति-ज्ञान हुआ और छहों राजा प्रतिबोध पाये । भगवान ने छहों कमरे के द्वार खोल दिये । छहों राजा, बाहर निकल कर, हाथ जोड़ भगवान से विनती करने और कहने लगे—हे प्रभो, आपने हमें नरक में पड़ने से बचाकर, बड़ा ही उपकार किया है । आप, पूर्वभव में भी हमारे गुरु थे और इस भव में भी हमारे गुरु हैं । आप हमारे अपराध क्षमा करें और हमें ऐसा मार्ग बतावें कि जिससे हम कल्याण कर सकें । भगवान ने उन्हें आश्वासन दिया और उनसे कहा कि—मेरी इच्छा तो अब चारित्र स्वीकार करने की है । यदि तुम्हारी भी यह इच्छा हो, तो राज पाट का प्रबंध करके चारित्र स्वीकार करो । छहों राजाओं ने, संयम लेना स्वीकार किया । तब भगवान मल्लि- [illegible] राजाओं को अपने साथ ले कर महाराजा कुम्भ के पास [illegible] उन्होंने महाराजा को प्रणाम किया । कुंभराजा ने भी

उनका सत्कार करके विदा किये। वे राज्यों का प्रबन्ध करने के लिए अपने-अपने नगर को लौट गये।

उसी समय लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से धर्म तीर्थ प्रवर्त्ताने की विनती की। भगवान ने, वार्षिक दान देना प्रारम्भ कर दिया। वार्षिकदान समाप्त होने पर, कुम्भ राजा और इन्द्रादि देवों ने, भगवान का निष्क्रमणोत्सव मनाया। भगवान मल्लिनाथ, जयंत-शिबिका में आरूढ़ हो, मिथिलापुरी के सहस्राम्र बाग में पधारे। वहाँ, भगवान ने शिबिका एवं वस्त्रालंकार त्याग दिये। पश्चात् मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को प्रातःकाल छट्ठ के तप में भगवान मल्लिनाथ ने, तीन सौ स्त्रियों और अनेक राजा एवं राज परिवार के पुरुषों सहित संयम स्वीकार किया। तत्क्षण भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान मल्लिनाथ, अशोक वृक्ष के नीचे, विशुद्ध ध्यान श्रेणी पर आरूढ़ हुए। क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो, भगवान ने घनघातिक कर्मों को नष्ट कर डाला और उसी रोज अपरान्ह काल में भगवान मल्लिनाथ को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

इन्द्रादि देवों ने केवलज्ञान-महोत्सव मनाकर, समवशरण की रचना की। बारह प्रकार की परिषद्, भगवान की वाणी सुनने को एकत्रित हुई। राजा कुम्भ और प्रतिबुद्ध आदि छः राजा इन्हीं के पीछे बैठे। भगवान ने कल्याणकारिणी वाणी

किया। प्रतिबुद्ध आदि छः राजा, भगवान के पास संयम में प्रवर्तित हुए और कुम्भ राजा ने, श्रावकपना स्वीकार किया।

दीक्षा लेने के पश्चात् भगवान मल्लिनाथ, चव्वनहजार नौ सौ वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते रहे और भव्य जीवों का कल्याण करते रहे। अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान मल्लिनाथ, पाँच सौ साध्वी और पाँचसौ साधु सहित, सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहाँ भगवान ने, अनशन कर लिया। अन्त में, फाल्गुन शुक्ल १२ को एक मास के अनशन में भगवान अघातिक कर्मों को नष्ट कर, सिद्ध पद को प्राप्त हुए।

भगवान मल्लिनाथ के भिषणजी आदि अट्ठाइस गणधर थे। चालीस हज़ार मुनि थे। पचपन हज़ार साध्वी थीं। एक लाख उन्नयासी हज़ार श्रावक थे और तीन लाख सत्तर हज़ार श्राविका थीं।

भगवान मल्लिनाथ, एक सौ वर्ष कुमारी पर्याय में रहे और चव्वनहज़ार नौसौ वर्ष केवली पर्याय में रहे। इस प्रकार भगवान मल्लिनाथ ने, सब पचपन हज़ार वर्ष का आयुष्य पाया और भगवान अरहनाथ के निर्वाण को एक हज़ार क्रोड़ वर्ष व्यतीत हो जाने पर, निर्वाण पधारे।

# अष्ट प्रवचन का थोकड़ा

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के २४ वें अध्ययन में समिती गुप्ति का वर्णन चला है उस पर से यह थोकड़ा संक्षेप से लिखा जाता है।

समिती का स्वरूप—समिती किसे कहते हैं? प्राणातिपात (जीव हिंसा) से निवृत होने के लिये सम्यक् प्रकार से की जाने वाली क्रिया को समिती कहते हैं अथवा उत्तम परिणामों की चेष्टा को भी समिती कहते हैं। यह जैनागम का सांकेतिक शब्द है।

समिती के पांच भेद—१ ईर्या समिती, २ भाषा समिती, ३ एषणा समिती ४ आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिती, ५ उच्चार प्रश्रवण खेल जल सिंघाण परिस्थापनिका समिती।

१ ईर्या समिती—विवेक पूर्वक दूसरे जीवों को किसी प्रकार हानि नहीं हो, ऐसे उपयोग सहित चलने की विधि को ईर्या समिती कहते हैं।

२ भाषा समिती—उपयोग सहित निर्वद्य (

वचन बोलने को विधि को भाषा समिती कहते हैं ।

३ एपणा समिती—निर्दोष शुद्ध भिक्षादि ग्रहण करने की विधि को एपणा समिती कहते हैं ।

४ आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिती—भंडोपकरण लेने और रखने में तथा वापरने में प्रति लेखन एवं प्रमार्जन की विधि को आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिती कहते हैं ।

५ उच्चार प्रश्रवण खेल जल सिंघाण परिस्थापनिका समिती—मलमूत्रादि परठने ( डालने ) की विधि को उच्चार प्रश्रवण खेल जल सिंघाण परिस्थापनिका समिति कहते हैं ।

## ईर्या समिती का स्वरूप

ईर्या समिति के चार भेद—१ आलम्बन, २ काल, ३ मार्ग और ४ यतना है ।

१ जिसका आलम्बन (प्रयोजन) लेकर भगवान ने गमन की आज्ञा दी है वे तीन प्रकार हैं—१ ज्ञान, २ दर्शन, और चारित्र ।

२ जिस समय विधिपूर्वक गमन हो सके वह दिवस के समय को ईर्या समिती का काल माना है ।

३ साधु को गमन करने के लिये उत्पंथ ( कुपंथ ) वर्जित रोज मार्ग को ही ईर्या समिती का मार्ग बताया है, उजड़ रास्ते में चलने से संयम की विराधना होती है —

४ यतना के चार भेद हैं—१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, और ४ भाव

द्रव्य से—दृष्टि द्वारा जीवादि पदार्थों को देखकर संयम तथा आत्मा की विराधना टाल कर चले।

क्षेत्र से—युगमात्र (धूंसरा प्रमाण) साढ़े तीन हाथ या चार हाथ प्रमाण भूमि आगे देखता हुआ चले।

काल से—दिन को देखकर और रात्रि में पूंज कर यत्न पूर्वक चले।

भाव से—सावधानी पूर्वक एकाग्रचित होकर चले, एकाग्रचित करने में निचे लिखे दस बाधक कारणों को रोके।

पाँच इन्द्रियों के विषय—१ शब्द, २ रूप, ३ गन्ध, ४ रस, और ५ स्पर्श।

पांच प्रकार का स्वाध्याय—६ वाचना, ७ पूछना, ८ परियटना, ९ अनुपेक्षा और १० धर्म कथा।

ये दस कारण ईर्या सोधन में बाधक हैं उन्हें रोक कर उपयोग पूर्वक चले।

## भाषा समिति का स्वरूप

आठ कारण ऐसे हैं जिससे भाषा समिति का पालन नहीं होता, वे लिखते हैं—१ क्रोध के वश, २ मान के वश, ३ माया (कपट) के वश, ४ लोभ के वश, ५ हास्य के वश

७ मौखर्य (वाचालता) के वश, ८ विकथा (गप्पें मारना) के वश।

ये आठ कारणों से बचकर भाषा का उपयोग करे—जिसके चार भेद हैं—१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल और ४ भाव।

द्रव्य से—आठ प्रकार की भाषा नहीं बोले—१ कर्कशकारी, २ कठोरकारी, ३ छेदकारी, ४ भेदकारी, ५ निश्चयकारी, ६ सावद्य (पाप) कारी, ७ क्लेशकारी और ८ मिश्र। ये आठ प्रकार की भाषा साधु नहीं बोले।

क्षेत्र से—रास्ते चलता हुआ बात न करे।

काल से—एक प्रहर रात्रि बीतने के बाद सूर्योदय न हो वहाँ तक उंचेस्वर (गाढ शब्द) से नहीं बोले।

भाव से—उपयोग पूर्वक राग द्वेष उत्पन्न करने वाली सावद्य भाषा नहीं बोले।

## एषणा समिति का स्वरूप

एषणा तीन प्रकार की होती हैं—१ गवैषणैषणा—जो अहारादि ग्रहण करने के पहले सावधानी करे, दोष टाले। २ ग्रहणैषणा जो अहारादि ग्रहण करते समय सावधानी रखे, दोष टाले। ३ परिभोगैषणा जो आहारादि भोगते समय सावधानी रखे, दोष टाले।

ये तीनों प्रकार की एषणा आहार (भातपानी) -उपधि (वस्त्र-पात्रादिक) और शय्या (मकान पाटपाटादि) सभी में करने से एषणा

समिती का पालन होता है जिसके चार भेद—द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव हैं।

द्रव्य से—उद्गम के १६, उत्पादना के १६ और एषणा के १० ये ४२ दोष ❀ टाल कर शुद्ध आहारादि की गवेषणा करे।

---

❀ ४२ दोषों का वर्णन

१६ उद्गम के दोष जो गृहस्थ राग भाव से लगावे।

१ आधाकर्मिक—साधु के लिए बनाया हुआ।

२ उद्देशिक—किसी एक साधु के लिये बनाया हुआ दूसरों के लिये उद्देशिक हो जाता है।

३ पूतिकर्म—शुद्ध आहारादि में आधाकर्मिक का अंश मिला हो।

४ मिसिज्जाए—अपने भी काम में आवे और साधु के भी काम में आवे इस भाव से बनावे।

५ ठवणा—साधु को देने के लिये रख छोड़े।

६ प्राभृतक—दोषी आहार दूसरे के यहां भेज कर साधु को [illegible]

७ प्रादुःकरण—अन्धकार पड़ने से साधु नहीं देखे [illegible] करावे।

८ क्रुत—मोल खरीद के दिलावे (कीमत देकर [illegible])

९ प्रामित्य—उधारा लाकर देवे अर्थात् [illegible] कर दे देवे।

क्षेत्र से—दो कोस उपरान्त लेजाकर आहारादि नहीं भोगे।

काल से—प्रथम पहर का लिया हुआ आहारादि चतुर्थ पहर में नहीं भोगे।

भाव से—राग द्वेष रहित होकर मांडला के पांच दोषों को टालकर आहार करे।

---

१३ मालाहृत—छींका, टांड, दादरा पर रखे हुए पदार्थ जिनको नीचे उतारने में कठिनाई आती हो या गिरने का भय हो।

१४ अछिज्जे—ठाया लगा हुआ हो उसे खोल कर देवे।

१५ अनिसृष्ट—दूसरों के शरीक में बनाया हुआ उनसे पूछे बिना या अभिप्राय जाने बिना दे दिया जावे।

१६ अध्ययपूर—अपने लिये बनाते हुए साधु को देने के लिए बढ़ाया जाय।

ये सब गृहस्थ के लगाने से लगते हैं।

इसी तरह—उत्पातिक के १६ दोष जो साधु आहारादिक लेने के लिये लगावे।

१ धात्री दोष—बालकों को धाय की तरह खिला कर लेवे।

२ दूति कर्म दोष—समाचार इधर के उधर पहुँचा कर लेवे।

३ निमित दोष—शभालाभ, सुख दुःख बता कर लेवे।

४ आजीविका दोष—जाति, कुल प्रकट कर के लेवे।

५ वणीमग दोष—रंक भिखारी की तरह दीनता दिखाकर लेवे।

# आदान भाण्डमात्र निक्षेपना समिति का स्वरूप

उपाधि दो प्रकार की होती हैं—१ ओघोपधि, २ ओपग्रहिकोपधि।

१ जो हमेशा पास रखी जावे जैसे रजोहरणादि। २ जो संयम रक्षार्थ या शरीर रक्षार्थ प्रयोजन उत्पन्न होने पर रखी जावे, जैसे दण्ड, लकड़ी आदि जिनको यत्नापूर्वक लेवे, रखे और वापरे।

---

६ तिगिच्छा दोष—औषधोपचार बताकर लेवे ( वैद्यगी करके )।
७ क्रोध दोष—क्रोध करके श्रावक को डर बता कर लेवे।
८ मान दोष—अभिमान धर कर लेवे अर्थात् लब्धी वगैरा पर घमण्ड करके लेवे।
९ माया दोष—कपट करके, छल करके लेवे।
१० लोभ दोष—लोलुपीपन से बार २ आकर लेवे।
११ संस्तव दोष—पहले या पीछे दाता की तारीफ करके लेवे।
१२ विद्या दोष स्वर साध कर या विद्या पढ़ा कर लेवे।
१३ मंत्र दोष—मंत्र यंत्र करके लेवे।
१४ चूर्ण योग दोष—टोटका या वशीकरण के प्रयोग बताकर लेवे।
१५ योग दोष - सौभाग्य, सुख, राज्य लाभ आदि योग बताकर लेवे।
१६ मूल कर्म दोष—ग्रह, नक्षत्र, दोष, निवारण के उपाय बताकर लेवे।

[illegible] सहस्य से प्रेम बढ़ा कर लगाता है

इसके चार भेद—१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, और ४ भाव हैं।

द्रव्य से—भण्डोपकरण, यत्नपूर्वक ले और रखे।

क्षेत्र से—भण्डोपकरण, बिखरे हुए न रखे अथवा प्रतिलेखन नहीं हो सके, वैसे स्थान पर नहीं रखे।

---

शंकितादि दस दोष गृहस्थ और साधु दोनों मिल कर लगाते हैं।

१ शङ्कित दोष—दोषित की शंका होते हुए देवे तथा लेवे।

२ म्रक्षित दोष—सचित पदार्थ से खरड़ा हुआ अथवा पृथ्वी पानी अग्नि आदि संघट्टा वाला आहार देवे लेवे।

३ निक्षिप्त दोष—अग्नि पानी वनस्पति पर रखा हुआ देवे लेवे।

४ पिहित दोष—सचित पदार्थ से ढंका हुआ देवे लेवे।

५ संहृत दोष भाजन बदल कर बड़े से छोटे में लेकर देवे लेवे।

६ दायक दोष—अशक्त या पीड़ा पाता हुआ उठ कर देवे लेवे।

७ उन्मिश्रित दोष—बिना उपयोग से दूषित शुद्ध आहार मिला कर देवे लेवे।

८ अपरिणित दोष—दो के विभाग का हो, एक की इच्छा न हो वह देवे लेवे।

९ लिप्त पिंड दोष—खरड़ा हुआ हाथ या बरतन पीछे से धोवे वैसा देवे लेवे।

१०—छर्दित दोष—नीचे गिरता हुआ देवे लेवे।

ये कुल ४२ दोष टालने चाहिये।

काल से—प्रातः सायंकाल दोनों समय यथाविधि प्रतिलेखन करे।

भाव से—ममत्व रहित रखे और भोगे याने राग भाव उत्पन्न हो, ऐसी उपाधि नहीं रक्खे न उस पर गृद्धि भाव लावे।

## उचार प्रश्रवण खेल जल सिंघाण परिस्थापनिका समिती का स्वरूप

१ उचार-भिष्टा, २ प्रश्रवण—पेशाव, ३ खेल-मुँह से निकलने वाला श्लेष्म (खंखार), ४ सिंघाण—नाक का मैल, ५ जल—शरीर का मैल (पसीना), ६ आहार—अशनादिक जो मात्रा से अधिक आ गया हो अथवा अपथ्यकारी हो, जिसे परठना पड़े, ७ उपधि—जो वर्षाकाल में ली हुई हो, उसे परठना पड़े, ८ देह—शरीर कारणवश परठना पड़े। इसके सिवाय और भी पदार्थ परठने लायक हो उसे विधिवत् सावधानी से परठना चाहिये। इसके चार भेद हैं—१ द्रव्य, २, क्षेत्र, ३ काल और ४ भाव।

द्रव्य से—स्थंडिल के दस दोष टालकर परठे।

१ अणावायमसंलोए—कोई आता तथा देखता न हो ऐसे स्थान पर परठे।

२ अणुवघाइए—किसी को दुःख उत्पन्न न हो ऐसे स्थान पर परठे।

३ समे — जहां समभूमि हो, ऊंची या नीची भूमि न हो वहां पर परठे।

४ अझुसिरे—जहां पोलार हो या घासपत्ते से जमीन आच्छादित हो वहां नहीं परठे।

५ अचिरकाल कयंमिए—जहाँ थोड़े काल पहले अग्नि से जली हुई भूमि हो और वहाँ जीव उत्पन्न नहीं होते हों वहां परठे।

६ विच्छिन्ने—भूमि कम से कम एक हाथ लम्बी चौड़ी अवश्य हो वहाँ परठे।

७ दूर मोगाढे—जहाँ कम से कम चार अंगुल की अचित भूमि हो वहाँ परठे।

८ णासन्ने—जहाँ ग्राम आरामादि नजदीक न हो वहाँ दूर परठे।

९ बिल वज्जिए—कीड़ी मूपादिक के बिल हो वहाँ न परठे।

१० तससपाणवीय रहिए—द्वीन्द्रियादिक त्रसजीव बीज धान्यादिक नहीं हो वहां परठे।

क्षेत्र से—शहर में उतरे हों तो गृहस्थ के द्वार पर और शहर बाहर हों तो मार्ग में न परठे।

काल से—सायंकाल (थोड़ा दिन रहते) परठने की भूमि का प्रतिलेखन कर लेवे, उसी स्थान पर रात्रि में परठे।

भाव से—परठने जाते समय आवस्सइ २ कह कर जावे।

परठते समय शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा मांगे। परठने बाद तीन बार वोसिरे २ कहे। उपाश्रय में आते समय निस्सही २ कहे। बाद में इरियावही का कायोत्सर्ग करे।

## गुप्ति का स्वरूप

गुप्ति किसे कहते हैं ? संसार के कारणों से आत्मा की रक्षा करने ( न फसने देने ) को गुप्ति कहते हैं अथवा मन, वचन, काय की अशुभ प्रवृति को रोकने और निर्दोष ( शुद्ध ) प्रवृत्ति में कायम रहने की चेष्टा को गुप्ति कहते हैं। जिसके तीन भेद हैं—१ मन गुप्ति, २ वचन गुप्ति, ३ काय गुप्ति।

मन गुप्ति के तीन भेद—१ संरम्भ, २ समारम्भ और ३ आरम्भ।

मन में विचार करना कि मैं ऐसा करूँगा जिससे यह मर जावेगा, इसे मानसिक संकल्प कहा जाता है और संरम्भ भी। दूसरों को पीड़ा उपजाने का उपाय रूप उच्चाटनादि का ध्यान करना इसे समारम्भ और अत्यन्त क्लेश रूप दूसरों के प्राण लेने में समर्थ क्रिया रूप चिन्तवन को आरम्भ कहते हैं।

इसके १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल और ४ भाव ये चार भेद हैं।

द्रव्य से, मनोयोग के संक्लिष्ट द्रव्यों का रोके और शुभ प्रशस्त द्रव्यों को प्रवर्तावे।

क्षेत्र से—सब क्षेत्र में प्रवर्ते ।

काल से—जिस समय में प्रवर्ते ।

भाव से—उपयोग सहित शुभ में प्रवृति करे अशुभ विचारों को रोके ।

वचन गुप्ति के तीन भेद—१ संरम्भ, २ समारम्भ, और ३ आरम्भ ।

(मनो गुप्ति की तरह समझें । फरक इतना ही है कि मन के स्थान पर वचन कहें । इसी तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव की भी व्याख्या समझनी चाहिए । )

काय गुप्ति के तीन भेद—१ संरम्भ, २ समारम्भ, और ३ आरम्भ ।

द्रव्यादिक चार भेद मन गुप्ति के अनुसार है ।

काय की प्रवृति अशुभ से रोक कर शुभ में प्रवर्तावे ।

उपरोक्त पांच समिति और तीन गुप्ति मिलकर अष्टप्रवचन कहे गये हैं । इन आठ वचनों की आराधना करनेवाला संसार से शीघ्र ही मुक्त होकर मोक्ष की प्राप्ति करता है ।

यह आठ प्रवचन का विधान मुख्यतया साधु को पालन करने के लिए है परन्तु गृहस्थ भी इन कामों में जितना २ विवेक रख सके उतना ही कल्याण का कारण है । शुभम ।

---

# भगवान श्री अरिष्टनेमि

---

## प्रार्थना



**श्लोक :—**

*यो रेवताख्य गिरि मूर्ध्नि तपांसि भोग,*
*राजीमऽतीत्य जनमारचयांचकार ।*
*नेमि जना नमत यो विगतन्तरारि,*
*राजीमतीत्य जनमारचयांचगार ॥*

भावार्थ—हे 'भव्यो' तुम विषय सेवन को छोड़ कर जिसने उग्रसेन की पुत्री राजमती का त्याग करके रेवतगिरि व उजयन्त शिखर पर तप किया था उन अरिष्टनेमिनाथ को भजो और जिनके अन्तराय रूपी कर्म-नष्ट हो गया है उन्हीं को प्रणाम करो।

# पूर्वभव

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अचलपुर नाम का नगर था। वहाँ विक्रमधन नामका राजा राज्य करता था, जिसकी धारिणी नाम्नी सुशीला रानी थी।

एक रात को धारणी रानी ने स्वप्न देखा कि एक आम का वृक्ष फूला-फला हुआ है, जिसके लिये एक पुरुष कहता है कि यह वृक्ष पृथक-पृथक स्थान पर नव बार स्थापित होगा। रानी ने यह स्वप्न अपने पति को सुनाया। राजा विक्रमधन ने स्वप्नशास्त्रियों से रानी के स्वप्न का फल पूछा। स्वप्नशास्त्रियों ने कहा, कि स्वप्न के प्रभाव से रानी, एक उत्कृष्ट पुत्र को जन्म देंगी, परन्तु स्वप्न का आम्र-वृक्ष, भिन्न-भिन्न स्थान पर नव बार स्थापित होगा, इसका आशय हम नहीं कह सकते, केवली भगवान ही कह सकते हैं।

समय पर रानी ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। विक्रमधन ने पुत्र का नाम धनकुँवर रखा। जब धनकुँवर युवक हुआ, तब उसका विवाह कुसुमपुर के राजा सिंहरथ की कन्या धनकुमारी के साथ हुआ।

एक समय धनकुँवर घोड़े पर बैठ, वन-क्रीड़ार्थ उद्यान में गया। वहाँ, चतुर्विध ज्ञानी वसुन्धर मुनि देशना देते थे।

धनकुँवर भी देशना सुनने बैठ गया। पीछे से राजा विक्रमधन आदि मुनि की देशना सुनने के लिए आये। देशना की समाप्ति पर, राजा, विक्रमधन वसुन्धर मुनि से पूछने लगा कि हे महाभाग ! जब यह मेरा पुत्र धनकुमार गर्भ में था, तब इसकी माता ने स्वप्न में एक फला फूला आम्र का वृक्ष देखा था, और स्वप्न में ही किसी ने इसकी माता से यह भी कहा था, कि यह आम्र वृक्ष, भिन्न भिन्न स्थान पर नव बार स्थापित होगा। स्वप्न प्रभाव से, रानी ने इस धनकुमार पुत्र को जन्म दिया, परन्तु स्वप्न में रानी से किसी ने जो कहा था कि यह आम्र-वृक्ष भिन्न भिन्न स्थान पर नव बार स्थापित होगा, इसका क्या मतलब ? राजा का प्रश्न सुनकर महाज्ञानी वसुन्धर मुनि ने, ध्यानस्थ हो, वहाँ से दूर विराजे हुए केवली भगवान से सम्यक् ज्ञानार्थ मन द्वारा यह प्रश्न किया, कि विक्रमधन के प्रश्न का उत्तर क्या है ? केवली भगवान ने, मुनि के प्रश्न के उत्तर में भावी तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि के चरित्र की ओर इशारा किया। अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान द्वारा केवली भगवान के मनोगत अपने प्रश्न के उत्तर सम्बन्धी उक्त भावों को जान कर, मुनि ने, राजा विक्रमधन से उसके प्रश्न के उत्तर में कहा, कि तुम्हारा यह धनकुमार पुत्र, इस भव के पश्चात् और भव करता हुआ, नवें भव में इसी भरतक्षेत्र में अरिष्टनेमि नाम का बाईसवाँ तीर्थङ्कर होगा। यह सुन कर सबके

सहित विक्रमधन बहुत प्रसन्न हुआ और मुनि को वन्दन नमस्कार करके अपने घर आया।

एक समय धनकुमार अपनी पत्नी धनवती के साथ जल-क्रीड़ा करने सरोवर पर गया। वहाँ, धनवती ने देखा कि एक मुनि, मूर्छितावस्था में भूमि पर पड़े हुए हैं। धूप और परिश्रम के मारे उनका कण्ठ प्यास से सूख रहा है तथा फटे हुए पाँवों में से रक्त भी निकल रहा है। धनवती ने अपने पति का ध्यान, मुनि की ओर आकर्षित किया। मुनि को देख कर धनकुमार, धनवती सहित मुनि के पास आया। दम्पति ने, शीतलोपचार से मुनि को स्वस्थ किया। मुनि ने, दम्पति को धर्मोपदेश दिया जिसे सुन कर धनकुमार और धनवती ने, श्रावक व्रत स्वीकार किये। कुछ काल रह कर, वे मुनि अन्यत्र विहार कर गये।

समय देखकर, राजा विक्रमधन ने, अचलपुर का राज-पाट अपने पुत्र धनकुमार को सौंप दिया और स्वयं आत्म-कल्याण करने में लग गया। धनकुमार, राजा बन कर अचलपुर का राज्य करने लगा। पुण्य योग से जिनने धनकुमार के भावी भव बताये थे वे—वसुन्धर मुनि विचरते-विचरते अचलपुर नगर में पधारे। रानी सहित महाराजा धन, मुनि को वन्दना करने गये। मुनि का उपदेश सुनकर दम्पति को संसार से विरक्ति हो गई। धन राजा और धनवती रानी ने, वसुन्धर मुनि से संयम

स्वीकार कर लिया। धन राजा, संयम लेने के पश्चात् गुरु के साथ रह कर अनेक प्रकार के कठिन तप तपने लगे। वे, गीतार्थ हुए, तब वे आचार्य पद से विभूषित किये गये। धन मुनि ने, अनेक भव्य जीवों को कल्याण मार्ग बताया। अन्त में अनशन द्वारा शरीर त्याग, धनवती, सहित धन, मुनि, प्रथम सौधर्म देवलोक में, शक्रेन्द्र के सामानिक इन्द्र हुए।

प्रथम सौधर्म देवलोक का आयुष्य समाप्त करके, धन राजा का जीव वैताढ्यगिरि की उत्तर श्रेणी में स्थित सूरतेज नगर के सूर राजा की विद्युन्मति रानी के उदर से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ; जिसका नाम चित्रगति रखा गया। दूसरी ओर, इसी भरतक्षेत्र के वैताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणी में स्थित शिवमन्दिर नगर के राजा अनंगसिंह की पत्नी शशिप्रभा के उदर से धनवती का जीव प्रथम देवलोक का आयुष्य समाप्त करके पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रत्नवती रखा गया। एक समय राजा अनंगसिंह ने किसी निमित्तिया से पूछा, कि इस रत्नवती कन्या का पति कौन होगा? निमित्तिया ने उत्तर दिया कि जो व्यक्ति आपके पास से खड्ग रत्न लेगा और जिस पर देव, वृष्टि करेंगे, वही इस कन्या का पति होगा। भविष्य में निमित्तिया का यह कथन सही हुआ। चित्रगति का विवाह, रत्नवती के साथ हो गया।

सूर राजा ने, चित्रगति को राज्य सौंप कर

साधा। विद्याधर-पति चित्रगति, रत्नवती के साथ सानन्द राज-सुख भोगने लगा। कुछ काल पश्चात् चित्रगति के एक सामन्त मणिचूल राजा का देहान्त हो गया। मणिचूल राजा के शशि और शूर नाम के दोनों पुत्र, आपस में लड़ने लगे। इन दोनों को लड़ते देखकर, चित्रगति और रत्नवती को संसार से वैराग्य हो गया। दोनों ही ने दीक्षा ले ली। चिरकाल तक व्रत और तप की आराधना करके चित्रगति और रत्नवती का जीव, महेन्द्र कल्प नामक चतुर्थ देवलोक में उत्पन्न हुआ।

पूर्वमहाविदेह की पद्म नाम्नी विजय में सिंहपुर नाम का नगर था। वहां, हरिणंदो नाम का राजा था, जिसकी रानी का नाम, प्रियदर्शना था। महेन्द्रकल्प का आयुष्य समाप्त करके चित्रगति का जीव, प्रियदर्शना के गर्भ में आया। रानी ने, शुभ स्वप्न देखा। समय पर, रानी प्रियदर्शना ने एक पुत्र प्रसव किया। हरिणंदी राजा ने, पुत्रजन्मोत्सव मना कर, बालक का नाम अपराजित रखा। जब अपराजित, बड़ा हुआ, तब उसकी मैत्री बचपन से साथ रहने वाले विमलबोध नाम के मन्त्री-पुत्र से हो गई।

एक बार अपराजित और विमलबोध दोनों ही मित्र, अश्वारूढ़ हो, वन में गये। वहां, दोनों के घोड़े, दोनों को, एक गहन जंगल में ले उड़े और रोकने पर भी न रुके। जब घोड़े

स्वयं ही थक कर रुके, तब दोनों मित्र, घोड़ों पर से, उतरे। घोड़े पर से उतर कर, कुमार अपराजित ने विमलबोध से कहा कि अपने को ये घोड़े यहां ले आये, यह एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। अब अपन इसी सिलसिले में पृथ्वी-पर्यटन भी कर सकेंगे। विमलबोध ने, अपराजित की बात का समर्थन किया। दोनों मित्र, भ्रमण के लिए चल दिये। भ्रमण करते हुए और भूचर[1] खेचर[2] अनेक राज-कन्याओं के साथ विवाह करते हुए दोनों मित्र, जनानन्द नगर में आये।

महेन्द्र देवलोक का आयुष्य समाप्त करके रत्नवती का जीव इसी जनानन्द नगर के जितशत्रु राजा की रानी धारिणी के गर्भ से पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम प्रीतिमती था। अपने मित्र विमलबोध सहित अपराजित कुमार जिस समय जनानन्द नगर में आया हुआ था, उस समय प्रीतिमती के लिए स्वयंवर हो रहा था। अपराजित ने, स्वयंवर में प्रीतिमती को प्राप्त किया। प्रीतिमती के साथ विवाह करके, अपने मित्र सहित कुमार अपराजित, बहुत सी ऋद्धि के साथ अपने नगर सिंहपुर को लौटा। अपराजित कुमार को सब प्रकार से योग्य देख कर, राजा हरिणन्दी ने सिंहपुर का राज्य अपराजित को सौंप दिया और आप आत्मकल्याण करने लगा।

१—पृथ्वी पर चलनेवाले। २ आकाश में चलनेवाले।

अपराजित राजा हुआ। एक बार वह उद्यान में गया था। वहाँ उसने देखा, कि एक सार्थवाह का पुत्र दिव्यवस्त्रालंकार पहने, अपने मित्र एवं अपनी स्त्रियों सहित घूम रहा है। राजा अपराजित, उसे देख कर सन्तुष्ट हुआ और यह जान कर उसे अभिमान भी हुआ कि मेरे नगर में ऐसे-ऐसे सेठ तथा श्रीमन्त भी हैं। इस प्रकार अभिमान करता हुआ, अपराजित राजा अपने स्थान को लौट आया। दूसरे दिन, राजा फिर बाहर घूमने के लिए निकला। उस समय उसने देखा, कि चार पुरुषों से उठाया हुआ एक शव आ रहा है, जिसके साथ शोकसूचक बाजा बज रहा है, और पीछे स्त्रियाँ एवं कुटुम्बी-जन हाय-हाय करके विलाप कर रहे हैं। सेवकों द्वारा राजा ने जब यह जाना कि यह शव उसी सार्थवाह—पुत्र का है, जो कल उद्यान में मिला था और जिसे देख कर मुझे प्रसन्नता हुई थी, तब राजा को संसार से घृणा हो गई। वह संसार के अनित्य-स्वरूप को समझ गया। इसी बीच में, जनता का उपकार करते हुए, कोई केवली भगवान, सिंहपुर नगर में पधारे। राजा अपराजित ने, भगवान का उपदेश सुना; जिससे प्रतिबोध पाकर, उसने राजपाट अपने पुत्र कुमारपद्म को सौंप दिया और स्वयं अपनी रानी प्रीतिमती तथा अपने मंत्री आदि सहित संयम में प्रव्रजित हो गया।

अन्त में, कठिन तपपूर्वक शरीर त्याग, अपराजित का जीव, अरणक देवलोक में, महाऋद्धिवंत देव हुआ।

इसी भरतक्षेत्र के कुरुदेश में, हस्तिनापुर नामक नगर था। वहां श्रीसेन नाम का राजा था, जिसके श्रीमती नाम की पटरानी थी। अपराजित का जीव, अरणक देवलोक का आयुष्य भोग कर, श्रीमती के गर्भ में आया। श्रीमती ने स्वप्न में चंद्र देखा। परिणामतः गर्भकाल की समाप्ति पर श्रीमती ने, शुभलक्षण-संपन्न पुत्र को जन्म दिया। श्रीसेन ने, पुत्रजन्मोत्सव मना कर, बालक का नाम शंखकुमार रखा। अपराजित के मित्र विमलबोध का जीव भी अरणक देवलोक का आयुष्य समाप्त करके, श्रीसेन राजा के मंत्री गुणनिधि के यहां, पुत्र रूप में जन्मा; जिसका नाम मतिप्रभ हुआ। शंखकुमार और मतिप्रभ में बाल्यकाल से ही गाढ़ी मैत्री हो गई। दोनों वृद्धि पाने लगे। इधर, अंग देशान्तर्गत चम्पानगरी के राजा जितारि के यहां, प्रीतिमती का जीव भी अरणक देवलोक का आयुष्य समाप्त करके पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ, जिसका नाम यशोमति रखा गया। यशोमति महान् रूपवती थी, इस कारण एक विद्याधर उसे हरण करके भागा। शंखकुमार ने, विद्याधर से यशोमति का उद्धार किया। और यशोमति के आग्रह से उसका विवाह अपने साथ कर लिया।

बहुत काल तक पिता द्वारा प्राप्त राज्य का उपभोग करके

अपने मंत्री आदि और अपनी रानी यशोमति सहित शंख राजा, केवली भगवान श्रीसेन के पास संयममें प्रवर्जित हो गये। चारित्र का पालन, एवं बीस बोलों में से अनेक बोलों की आराधना करके शंख मुनि ने, तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया और अन्त में अनशन द्वारा समाधि पूर्वक शरीर त्याग अपराजित नाम के चौथे अनुत्तर विमान में, परमगर्द्धिक अहमिन्द्र देव हुए।

## अन्तिम भव

इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में, यमुनातट पर, शौर्यपुर नाम का एक नगर था। वहाँ, समुद्र विजय नाम के प्रथम दशार्द राजा राज्य करते थे। समुद्रविजय, दस भाई थे, जो दस-दशार्द के नाम से प्रख्यात थे। ये दसों भाई, यदुवंशी थे। समुद्रविजय सब भाइयों में बड़े थे। समुद्रविजय के शिवादेवी नाम्नी रानी थी जो गुण और सौन्दर्य में अनुपम थी।

अपराजित विमान से बत्तीस सागरोपम का आयुष्य समाप्त करके शंख राजा का जीव, कार्तिक कृष्णा १२ की रात को जब चन्द्र, चित्रा नक्षत्र में आया तब महारानी शिवादेवी की कुक्षि-कन्दरा में अवतीर्ण हुआ। सुख-शैय्या पर शयन किये हुई महारानी शिवादेवी ने, तीर्थङ्कर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्न देख कर महारानी शिवादेवी जाग उठीं। उन्होंने

महाराजा समुद्रविजय को स्वयं ने देखे हुए स्वप्न सुनाये, जिन्हें सुन कर महाराजा समुद्रविजय ने महारानी शिवादेवी से यह कहा कि, तुम महाभाग्यशाली पुत्र की माता बनोगी। यह सुन कर महारानी शिवादेवी बहुत प्रसन्न हुई, और धर्म ध्यान करके शेष रात व्यतीत की।

प्रातःकाल महाराजा समुद्रविजय ने कौष्टुकी को बुला कर, उनसे शिवादेवी के देखे हुए, स्वप्नों का फल पूछा। इतने ही में, योगायोग से एक चारण मुनि भी पधार गये। राजा रानी ने चारण मुनि को वन्दन करके स्वप्नों का फल पूछा। मुनि ने उत्तर दिया कि तुम्हारे यहाँ, भगवान तीर्थङ्कर पुत्र-रूप में उत्पन्न होंगे। यह कहकर मुनि पधार गये। महाराजा समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी को स्वप्न-फल सुन कर बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने स्वप्न शास्त्रियों को प्रचुर धन देकर सम्मान-पूर्वक विदा किया।

महारानी शिवादेवी, गर्भ का पालन करने लगीं। गर्भकाल समाप्त होने पर, महारानी शिवादेवी ने श्रावण शुक्ला ५ की रात को जब चन्द्र चित्रा नक्षत्र में आया हुआ था श्यामवर्ण और शंख के चिन्ह वाले मनोहर कान्तिकारी पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही क्षण भर के लिए त्रिलोक में प्रकाश हो गया और नारकीय जीवों को भी शान्ति मिली। भगवान का जन्म हुआ जान कर, छप्पन दिक्कुमारियों एवं देवों सहित

इन्द्रों ने, सुमेरुगिरि पर भगवान का जन्म-कल्याणोत्सव मनाया। प्रातःकाल महाराजा समुद्रविजय ने भी पुत्र जन्मोत्सव करके भगवान का अरिष्टनेमि नाम दिया। समुद्रविजय के भाई वसुदेव ने भी मथुरा में, भगवान का जन्मोत्सव मनाया। अंगुष्ठामृत का पान करते हुए भगवान, अप्सराओं के पालन-पोषण में वृद्धि पाने लगे।

एक बार, बालक्रीड़ा करते हुए भगवान अरिष्टनेमि ने मोतियों को मुट्ठी में भर-भर कर इधर उधर फेंक दिया। स्त्री-स्वाभावानुसार माता शिवादेवी, इसके लिए भगवान को उपालम्भ देने लगीं। उसी समय इन्द्र ने, जिस-जिस स्थान पर भगवान द्वारा फेंके गये मोती पड़े थे, उस-उस स्थान पर, मोती के झाड़ खड़े कर दिये, जिनकी प्रत्येक डाली पर, मोतियों के गुच्छे लग रहे थे। यह देखकर महारानी शिवादेवी बहुत प्रसन्न हुई और भगवान से कहने लगीं, कि पुत्र और भी मोती बोओ। माता की इस बात के उत्तर में भगवान ने कहा—माता, मोती समय पर ही उगते हैं। भगवान ने यह कहा, उसी समय से संसार में यह कहावत प्रचलित हो गई, कि समय पर बोये हुए ही मोती निपजते हैं।

भगवान अरिष्टनेमि जब बाल्यावस्था में थे, उन्हीं दिनों में मथुरा में, श्रीकृष्ण ने राजा कंस का वध किया था। कंस की रानी

जीवयशा, अपने पिता जरासंध, प्रतिवासुदेव जो तीन खंड पृथ्वी का स्वामी था के पास गई और उसने जरासंध को यादवों के विरुद्ध उकसाया। जरासन्ध ने अपना दूत महाराजा समुद्रविजय के पास भेज कर उसके द्वारा राम और कृष्ण की माँग की। समुद्रविजय ने, राम और कृष्ण को भेजने से इनकार कर दिया। परिणामतः विरोध ने ज़ोर पकड़ा। समुद्रविजय ने नैमित्तिक से पूछा, तो उसने यह कहा, कि इस समय यदुवन्शियों का कल्याण, शौर्यपुर छोड़कर पश्चिम दिशा की ओर जाने में ही है। नैमित्तिक की बात मान कर, महाराजा समुद्रविजय, उग्रसेन सहित अठारह क्रोड़ यदुवंशियों को लेकर शौर्यपुर से निकल पड़े। सब यादव, सौराष्ट्र में आये। सौराष्ट्र में, जहाँ यादवों का पड़ाव हुआ, वहाँ श्रीकृष्ण ने अष्टम तप करके देवता का स्मरण किया। स्मरण करते ही, लवणसुष्टि देव, कृष्ण के सामने उपस्थित हुआ। श्रीकृष्ण ने उससे कहा, कि हम लोगों को रहने के लिए स्थान चाहिए। लवणसुष्टि देव ने उत्तर दिया, कि मैं अभी इन्द्र को आपकी बात से परिचित करता हूँ।

लवणसुष्टि देव, तत्काल सौधर्म-पति इन्द्र के पास उपस्थित हुआ और सब वृतान्त उन्हें सुनाया। सब वृतान्त सुनकर इन्द्र ने कहा, कि यादवों में कृष्ण बलराम और भगवान अरिष्टनेमि ऐसे तीन लोकोत्तर हैं। यदि वे चाहें तो क्षण में ही

को जीत सकते हैं, फिर भी ये, समय की प्रतीक्षा करते हैं, असमय में कोई काम नहीं करना चाहते। यह कह कर इन्द्र ने, वैश्रमण धनपति देव को यादवों के लिये एक नगरी निर्माण करने की आज्ञा दी। इन्द्रकी आज्ञा पाकर अनेक देव, नगरी की रचना करने में लग गये और रात-ही-रात में बारह योजन लम्बी नव योजन चौड़ी साक्षात् देवलोक जैसी नगरी बना डाली। प्रातःकाल यादव लोग देखते हैं, कि उनके लिए एक रम्य नगरी तैयार है। समस्त यादवों ने, उस नव रचित नगरी में प्रवेश किया और उसमें बस गये। उस स्वर्ण के कोट और रत्न के कँगूरेवाली नगरी का नाम द्वारका रखा गया। श्रीकृष्ण वासुदेव को उस नगरी का राजा बनाया गया।

जब मगधाधिपति जरासन्ध ने श्रीकृष्ण और द्वारका का समाचार सुना, तो उसने द्वारका पर चढ़ाई कर दी। श्रीकृष्ण भी, युद्ध की तैयारी करके जरासन्ध का सामना करने के लिए चले। भगवान अरिष्टनेमि भी श्रीकृष्ण की सेना में सम्मिलित हुए। भगवान के लिए शक्रेन्द्र ने अपना देवनेमि रथ और मातलि सारथी को दिव्य अस्त्र-शस्त्र सहित भेजा। शक्रेन्द्र के भेजे हुए रथ में भगवान विराजे। यद्यपि अकेले भगवान अरिष्टनेमि ही त्रिलोक पर विजय प्राप्त कर सकते थे, लेकिन वे दयालु होने के साथ ही इस बात को भी जानते थे, कि प्रतिवासुदेव का पराजय, वासुदेव द्वारा ही

होता है। इसलिये भगवान ने, आवश्यकता होने पर जरासन्ध की सेना के किसी रथ की ध्वजा, किसी सैनिक का शस्त्र और किसी सेनापति का मुकुट तो अवश्य गिराया, परन्तु एक भी मनुष्य का वध नहीं किया। पश्चात् जब श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को मार डाला और उसकी सेना के राजा, राजकुमार आदि घबराने लगे तब भगवान ने, समस्त भयभीत लोगों को आश्वासन देकर, अभयदान दिया।

भगवान अरिष्टनेमि जब युवक हुए, तब महाराजा समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी, भगवान से विवाह करने का आग्रह करने लगीं। भगवान, माता-पिता के आग्रह को टालते रहते, और जब अधिक आग्रह होता, तब यह कह दिया करते कि मेरे योग्य कन्या मिलने पर मैं उससे सम्बन्ध जोड़ लूँगा। इसी प्रकार बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। उधर यशोमति रानी का जीव, अपराजित विमान का आयुष्य समाप्त करके, मथुरेश महाराजा उग्रसेन की रानी धारिणी के गर्भ से कन्या रूप में उत्पन्न हुआ। उग्रसेन और धारिणी ने, कन्या का नाम राजमती रखा। उत्कृष्ट रूपवाली राजमती, समय पर बड़ी हुई और अपनी सुन्दरता से सब को पराजित करने लगी।

एक समय भगवान अरिष्टनेमि, अन्य यादवकुमारों के साथ घूमते हुए, श्रीकृष्ण वासुदेव की आयुधशाला में पहुँचे

आयुधशाला में सुदर्शनचक्र, शारङ्ग धनुष, कौमुदकी गदा और पांचजन्य शंख आदि कृष्ण के आयुध रखे हुए थे। इन आयुधों का उपयोग, श्रीकृष्ण के सिवा और कोई नहीं कर सकता था। भगवान अरिष्टनेमि, श्रीकृष्ण के आयुधों को लेने लगे, तब आयुधागार—रक्षक ने, भगवान से प्रार्थना की, कि हे प्रभो, इन आयुधों का उपयोग करना तो दूर रहा, श्रीकृष्ण के सिवा और कोई व्यक्ति इन्हें हाथ लगा कर उठाने में भी समर्थ नहीं है। कृपया आप इन्हें उठाने का प्रयास न करें। आयुधागार—रक्षक की बात सुन कर, भगवान कुछ मुसकराये और पांचजन्य शंख उठा कर बजाने लगे। पांचजन्य शंख की गगनभेदी ध्वनि से, द्वारका के महल पर्वत आदि कम्पायमान हो उठे। श्रीकृष्ण राम और दशार्हादि भी आश्चर्य करने लगे। कृष्ण विचारने लगे, कि क्या कोई चक्रवर्ती उत्पन्न हुए हैं या इन्द्र पृथ्वी पर आये हैं, जो यह ध्वनि हुई है! इतने ही में कृष्ण को यह समाचार मिला कि, आयुधागार में श्री अरिष्टनेमि कुमार ने, पांचजन्य शंख बजाया है। अन्य राजाओं सहित श्रीकृष्ण आयुधागार में आये। वहाँ देखते हैं कि कुमार अरिष्टनेमि अन्य यादव कुमारों के साथ खड़े हुए हैं और शारङ्ग धनुष हाथ में लेकर उसे टंकार रहे हैं। यह देखकर श्रीकृष्ण को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने, कुमार अरिष्टनेमि से, कहा, कि मैं तुम्हारी भुजाओं का बल देखना

चाहता हूँ। कुमार अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण की यह बात स्वीकार की। श्रीकृष्ण और कुमार अरिष्टनेमि अखाड़े में आये। यह समाचार सुन कर, समस्त यादव एवं द्वारका के नागरिक, अखाड़े के आस पास एकत्रित हो गये।

अखाड़े में खड़े होकर, श्रीकृष्ण ने अपनी भुजा ऊपर को उठा, भगवान श्री अरिष्टनेमि से कहा, कि मेरी भुजा को झुकाओ। भगवान अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण की भुजा को एक अंगुली मात्र से कमलनाल की तरह सहज ही झुका दी। यह देख कर श्रीकृष्ण सहित सब लोग बहुत विस्मित हुए। पश्चात भगवान श्री अरिष्टनेमि ने अपनी भुजा ऊपर उठाई और श्रीकृष्ण, अरिष्टनेमि भगवान की भुजा को झुकाने लगे। श्रीकृष्ण ने बहुत बल लगाया, यहाँ तक कि अपने दोनों हाथ से भगवान अरिष्टनेमि की भुजा झुकाने लगे, परन्तु श्रीकृष्ण इसमें सफल न हुए। अर्थात् श्रीकृष्ण भगवान अरिष्टनेमि की भुजा को न झुका सके। तब श्रीकृष्ण बहुत क्षुभित हुए और अपने मन में कहने लगे, कि ब्रह्मचर्य पालन करने के कारण ही कुमार अरिष्टनेमि इस प्रकार बल-सम्पन्न हैं, अतः किसी प्रकार इनका विवाह कर देना अच्छा है।

श्रीकृष्ण ने महल में आकर अपनी रानियों से कहा, कि किसी प्रकार कुमार अरिष्टनेमि से विवाह करना स्वीकार कराओ

यह सुनकर रानियों ने श्रीकृष्ण से कहा, कि इस समय वसन्त-ऋतु है, अतः आप फाग खेलने की तैयारी कराइये, फिर हम देवरजी से विवाह करना स्वीकार करा लेंगी। फाग की समस्त तैयारी करके परिवार सहित श्रीकृष्ण, कुमार अरिष्टनेमि को साथ लेकर, रेवतिगिरि पर आये। वहाँ सब स्त्री पुरुष नन्दनवन में क्रीड़ा करने लगे। क्रीड़ा करती हुई सत्यभामा रुक्मणी आदि कृष्ण की पटरानियों ने भगवान अरिष्टनेमि से कामजागृति के लिये युक्तिपूर्ण अनेक बातें कहीं, हर प्रकार की चेष्टा भी की, परन्तु भगवान अरिष्टनेमि, ब्रह्मचर्य से किंचित भी विचलित नहीं हुए। निराश होकर, वे, भगवान से प्रार्थना करके कहने लगीं, कि यदुवंशोत्पन्न एक एक साधारण वीर के भी अनेक अनेक पत्नियाँ हैं, लेकिन आप श्रीकृष्ण के भाई होकर भी स्त्री-रहित ही रहते हैं, यह श्रीकृष्ण के लिए लज्जा दिलानेवाली बात है। अतः आपको अवश्य ही अपना विवाह करना चाहिये। श्रीकृष्ण की रानियों की निराशा और उन की दीनता देखकर, भगवान दया भाव लाकर किंचित मुसकराये। भगवान को मुसकराते देखकर, श्रीकृष्ण की रानियों ने सब पर यह प्रकट कर दिया, कि देवरजी ने विवाह करना स्वीकार कर लिया है। यह सुन कर, समुद्रविजय, श्रीकृष्ण आदि बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीकृष्ण, कुमार अरिष्टनेमि के योग्य कन्या की चिन्ता करने

लगे। तब सत्यभामा ने श्रीकृष्ण से कहा, कि देवरजी के योग्य कन्या, मेरी बहन राजमती है। यदि आप राजमती के लिये प्रयत्न करें तो अपनी चिन्ता दूर हो सकती है। सत्यभामा की बात मान कर स्वयं श्रीकृष्ण ने, महाराजा उग्रसेन के पास जाकर अरिष्टनेमि के लिए राजमती की याचना की। उग्रसेन ने, श्रीकृष्ण की याचना स्वीकार करके कहा, कि मैं राजमती को, विवाह से पहले यों तो नहीं भेज सकता, यदि आप बारात सहित अरिष्टनेमि को लेकर आवें, तो मैं राजमती का विवाह अरिष्टनेमि के साथ कर सकता हूँ। श्रीकृष्ण ने उग्रसेन की बात स्वीकार की और विवाह-तिथि नियत करके बारात की तैयारी करने लगे।

भगवान श्री अरिष्टनेमि, अवधिज्ञान द्वारा यह जानते थे, कि अभी मेरे भोग-फल देने वाले कर्म का कुछ अंश शेष है जिससे निवर्तना आवश्यक है तथा यादवों के समक्ष कोई महान् आदर्श भी उपस्थित करना था। इसलिये उन्होंने श्रीकृष्ण द्वारा की जाने वाली विवाह सम्बन्धी प्रवृत्ति का विरोध नहीं किया, किन्तु मौन रहे।

बारात की तैयारी हुई। भगवान अरिष्टनेमि को स्नानादि करा कर और दूल्हे के अनुपम वस्त्र पहना कर, मौड़ बाँध दूल्हा बना हाथी पर बैठाया गया। समुद्रविजयादि दसों दशार्ह बलराम और श्रीकृष्ण वासुदेव आदि समस्त यदुवंशी

ससैन्य, बारात के रूप में धूम-धाम से भगवान अरिष्टनेमि के साथ चले ।

बारात विदा हुई । इस अवर्णनीय बारात को देवता लोग भी देखने लगे । बारात को देखकर, सौधर्मेन्द्र साश्चर्य विचारने लगे कि पूर्व तीर्थङ्करों के कथनानुसार, इन बाइसवें तीर्थङ्कर भगवान अरिष्टनेमि को बाल ब्रह्मचारी रहकर दीक्षा लेनी चाहिये थी, परन्तु इस समय तो उसके विपरीत कार्य होने जा रहा है, यानी बालब्रह्मचारी रहने के बदले भगवान अरिष्टनेमि, विवाह करने जा रहे हैं ! इस प्रकार आश्चर्य में पड़कर, सौधर्मेन्द्र ने अवधिज्ञान में देखा, तब यह जानकर उनका आश्चर्य मिटा, कि भगवान अरिष्टनेमि, बाल ब्रह्मचारी ही रहेंगे, यह विवाह-रचना, केवल कृष्ण की लीला है । अवधिज्ञान द्वारा इस प्रकार जान कर सौधर्मेन्द्र ब्राह्मण का रूप बना श्रीकृष्ण के आगे आ खड़े हुए, और शिर धुनकर श्री कृष्ण से कहने लगे; कि आप किस ज्योतिषी के बताये हुए लग्न में विवाह करने जा रहे हैं । आप, जिस लग्न में अरिष्टनेमि का विवाह करने जा रहे हैं, उस लग्न में अरिष्टनेमि का विवाह होना असम्भव-सा प्रतीत होता है ! ब्राह्मण की बात सुन कर, श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो ब्राह्मण से कहने लगे, कि—आप यह कहने के लिए किसके आमन्त्रण पर आये हैं ? आप अपने घर जाइये ! श्रीकृष्ण को क्रुद्ध देखकर, ब्राह्मण-

वेशधारी सौधर्मेन्द्र यह कह कर वहाँ से अदृश्य होगये, कि 'आप, अरिष्टनेमि का विवाह कैसे करते हैं, यह मैं भी देखता हूँ!'

चलते चलते बारात मथुरा के समीप आई। चारों ओर के लोग, बारात देखने के लिए दौड़ आये। राजमती की सखियाँ, राजमती से कहने लगीं! सखी, तू बहुत बड़भागिन है, इससे अरिष्टनेमि ऐसे उत्तम पुरुष तेरे लिए बारात सजा कर आये हैं। सखियों की बात सुन कर राजमती बहुत हर्षित हुई। वह भी, महल के झरोखे से बारात देखने लगी, और दूल्हा बने हुए भगवान अरिष्टनेमि को देखकर प्रसन्न होने लगी। इतने ही में राजमती की दाहिनी भुजा और दाहिनी आँख फड़क उठी। इस अपशकुन के होते ही राजमती की प्रसन्नता चिन्ता में परिणित हो गई। वह अपनी सखियों से अपशकुन बता कर कहने लगी कि जिन्हें देखकर मैं प्रसन्न हो रही हूँ, और जिनके कारण तुम मुझे बड़भागिन कह रही हो, उनके साथ विवाह होने में अवश्य ही किसी विघ्न की आशंका है! सखियाँ, राजमती को धैर्य देकर कहने लगीं कि तुम अकारण ही विघ्न की आशंका न करो, कुमार अरिष्टनेमि के साथ तुम्हारा विवाह सानन्द होगा।

रथारूढ़ भगवान अरिष्टनेमि सहित बारात महाराजा उग्रसेन के महल के सा[illegible]। उसी समय भगवान

पशु-पक्षियों की करुणा-पूर्ण चीत्कार सुनाई दी। पशु-पक्षी अपनी भाषा में भगवान से यह कह रहे थे, कि—हे प्रभो ! हम दुःखियों की रक्षा करनेवाले आप ही हैं। यद्यपि भगवान अरिष्टनेमि सब कुछ जानते थे, फिर भी उन्होंने सारथी से पूछा, कि—हे सारथी ! इन सुख के अभिलाषी पशु-पक्षियों को यहाँ बाड़े में क्यों घेर रखा है ? और यह लोग इस प्रकार आर्त्तनाद क्यों कर रहे हैं ? सारथी ने उत्तर दिया, कि आपके विवाहोपलक्ष्य में जो भात की रसोई दी जावेगी, उसमें बननेवाले माँस के लिये इन पशु-पक्षियों को बाड़े और पींजरे में बन्द किया गया है और मरने के भय से भीत होकर ये सब चिल्ला रहे हैं। सारथी की बात सुन कर, करुणानिधान भगवान अरिष्टनेमि ने, संसार के सामने जीव-रक्षा और भय-भीत को अभयदान देने का आदर्श रखने के लिये, सारथी से कहा कि—हे सारथी, इन जीवों की हिंसा, परलोक में मेरे लिये श्रेयस्कर नहीं हो सकती, अतः तुम इन दुःखी जीवों को बन्धनमुक्त कर दो।

भगवान की आज्ञा मान कर, सारथी ने, बाड़े और पींजरे में घिरे हुए समस्त पशु पक्षियों को खोल दिया। सारथी के कार्य से प्रसन्न होकर भगवान ने उसे मुकुट के सिवा अपने समस्त आभूषण पुरस्कार में दे दिये और साथ ही, रथ वापस लौटाने की आज्ञा दी। भगवान की आज्ञा से सारथी ने, रथ

वापस लौटा दिया। दूल्हे का रथ लौटता देख, श्रीकृष्ण, समुद्र-विजय आदि, भगवान अरिष्टनेमि के सामने जाकर उनसे कहने लगे, कि आपने करुणा करके पशु-पक्षियों को बन्धन मुक्त कर दिया, यह तो अच्छा ही किया, लेकिन अब वापस क्यों लौट रहे हैं ? आप, वापस न लौटिये, किन्तु चल कर उग्रसेन की कन्या के साथ विवाह करिये। सब की बात के उत्तर में भगवान कहने लगे, कि—आप मुझे जिस सम्बन्ध में जोड़ना चाहते हैं, मैं उससे भी पवित्र और विशाल सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ। मैं, किसी एक को अपना नहीं बनाना चाहता, न स्वयं ही किसी एक का रहना चाहता हूँ, किन्तु संसार के समस्त प्राणियों से प्रेम-सम्बन्ध जोड़ कर, मैं सभी का बनना चाहता हूँ। इसके सिवा अब मेरे भोग-फल देने वाले कर्म भी शेष नहीं हैं, अतः आप अधिक कुछ न कहिये। यह कह कर रथारूढ़ भगवान, आगे बढ़ गये और द्वारका के लिये चल पड़े। भगवान अरिष्टनेमि को जाते देख कर, दसों दशार्ह, कृष्ण आदि यादव भी निराश हो द्वारका लौट गये।

भगवान अरिष्टनेमि द्वार पर से लौट गये आदि वृत्तान्त जब राजमती ने सुना, तब वह, मूर्छित होकर कटी हुई लता के समान भूमि पर गिर पड़ी। दासियों ने शीतलोपचार द्वारा राजमती की मूर्छा दूर की और राजमती से कहने लगीं, कि

अच्छा हुआ जो निर्मोही अरिष्टनेमि, विवाह होने से पहले ही तुम्हें छोड़ कर चले गये। यदि तुम्हारा पाणिग्रहण करके फिर तुम्हें छोड़ जाते, तो तुम्हें महान कष्ट भोगना पड़ता और तुम कहीं की भी न रहतीं। अब तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो। हम महाराजा से निवेदन करेंगी, कि वे और किसी अच्छे रूप, कुल, गुण और बल सम्पन्न राजकुमार के साथ तुम्हारा विवाह करें। सखियों की बात, राजमती को ऐसी अप्रिय मालूम हुई, कि उसने अपने कानों को उँगली से बन्द कर लिया और फिर सखियों से कहने लगी—सखियो, तुम किसी और के साथ विवाह करने की तो बात ही मत करो। यह काम तो कुल्टाओं का है। मैं, अरिष्टनेमि को अपना पति मान चुकी हूँ, इस लिए उनके सिवा और सब पुरुष मेरे पिता-भ्राता के समान हैं। राजमती का उत्तर सुन कर, सखियाँ कहने लगीं, कि तुम धैर्य धरो, हम ऐसा प्रयत्न करेंगी, कि जिससे भगवान अरिष्टनेमि फिर लौटकर आवें।

द्वारका पहुँच कर भगवान अरिष्टनेमि, संसार से विरक्त हो आत्मचिन्तन करने लगे। उसी समय ब्रह्मकल्पवासी लोकान्तिक देव उपस्थित होकर भगवान से प्रार्थना करने लगे, कि—हे प्रभो, अब तीर्थ प्रवर्ता कर, भव्य जीवों के कल्याण का द्वार खोलिये। देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करके भगवान अरिष्टनेमि, वार्षिक दान देने लगे। [illegible]

वार्षिकदान को समाप्ति पर, इन्द्र तथा देवता, भगवान का दीक्षा महोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए। दीक्षाभिषेक के पश्चात भगवान उत्तरकुरु नाम की शिविका में आरूढ़ हुए। दिव्य एवं मानवी वाद्यों के बीच, शिविकारूढ़ भगवान अरिष्टनेमि, गिरनार पर्वत की तलाई में सहस्राम्र नाम के बाग में पधारे। श्रीकृष्ण, बलराम, समुद्रविजय आदि दसों दशार्ह एवं समस्त यादव लोग भी, जयजयकार करते हुए भगवान के साथ सहस्राम्र बाग में आये। सहस्राम्र बाग में पहुँच कर भगवान, पालकी से उतरे और शरीर पर के आभूषण भी त्याग दिये। पश्चात् श्रावण शुक्ला ६ को जब चन्द्र चित्रा नक्षत्र में आया छट्ठके तप में भगवान अरिष्टनेमि ने एक सहस्र पुरुषों के साथ संयम स्वीकार किया।

दीक्षा स्वीकार करते ही भगवान अरिष्टनेमि को मनःपर्यय नाम का चौथा ज्ञान प्राप्त हुआ। क्षण भर के लिए नारकीय जीवों को भी शान्ति मिली। भगवान ने, चातुर्मास में दीक्षा ली थी, और चातुर्मास में साधु लोग विहार नहीं करते हैं, इसलिए भगवान अरिष्टनेमि गिरनार पर्वत पर पधार गये। दूसरे दिन, वरदत्त ब्राह्मण के यहाँ परमान्न से भगवान का पारणा हुआ। दान की महिमा दर्शाने के लिए देवों ने पाँच दिव्य प्रकट किये।

भगवान अरिष्टनेमि, ५४ चव्वन दिन तक छद्मस्थ-अवस्था रहे और आत्मध्यान में रमण करते रहे। एक दिन भगवान गि नार पर्वत की तराई में स्थित, उसी सहस्राम्र बाग में पधारे, जि भगवान ने संयम स्वीकार किया था। वहाँ अष्टम तप में, ध्य स्थ हो भगवान-शुक्लध्यान में पहुँच कर, क्षपक श्रेणी पर आ हुए और फिर घातिक कर्म क्षय कर के आश्विन कृष्णा अमाव को भगवान ने अनन्त केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किए

आसनकम्प से, भगवान को केवलज्ञान हुआ जान, अच्युतादि इन्द्र और असंख्यात देवी देव, केवलज्ञान महोत्सव, के लिए उपस्थित हुए। श्री कृष्ण, समुद्रविजय आदि भी भग को वन्दन करने के लिए आये। समवशरण की रचना, जिसमें बैठकर द्वादश प्रकार की परिषद ने भगवान की सुनी। भगवान की वाणी सुन कर, अनेक भव्य जीव प्रति पाये। राजा वरदत्त को संसार से विरक्ति हो गई। भगवान् राजा वरदत्त को दीक्षा देकर त्रिपदी का उपदेश किया गणधर पद पर नियुक्त किया।

भगवान तो संयम में प्रवर्जित हो गये, परन्तु राजमती, वान के दर्शन की अनुरागिनी बन कर, आशा में ही दिन बि लगी। इसी प्रकार जब एक वर्ष बीत गया और भगवान ओर से राजमती की कोई खबर नहीं ली गई, तब राज

बहुत ही निराश हुई। इतने में ही उन्होंने यह सुना कि जिन्हें मैं अपना पति बनाना चाहती थी, वे अरिष्टनेमि तो संयम में प्रवजित हो गये। अब राजमती को, भगवान अरिष्टनेमि पति रूप में कभी मिलेंगे, यह आशा किंचित् भी न रही। वह विचारने लगी, कि भगवान अरिष्टनेमि मुझे इस प्रकार बीच ही में छोड़ गये, इसका कारण क्या है? प्रशस्त अध्यवसाय और विशुद्ध परिणामों के कारण राजमती को जाति स्मृतिज्ञान हुआ। अपने पूर्व भवों का वृत्तान्त जान कर, राजमती, भगवान अरिष्टनेमि के लिये कहने लगी, कि हे प्रभो, आप मुझे चाहे त्याग दें, परन्तु मैं आप को कदापि नहीं त्याग सकती। अब, मैं भी आपका ही अनुसरण करूँगी और आपकी तरह संसार त्याग, आपकी शिष्या बनूँगी!

राजमती ने, अब सब शृङ्गार त्याग दिये। वह दीक्षा लेने के लिए तैयार हुई। उसका साथ देने के लिए, सात सौ राजकन्याएँ एवं स्त्रियाँ भी तैयार हुईं। अपनी सात सौ साथिनियों सहित राजमती, द्वारका आई और वहाँ से भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन करने को गिरनार पर्वत के लिए चली। मार्ग में, आँधी पानी के प्रकोप से, राजमती की साथिनी राजमती से बिछुड़ गई। राजमती अकेली ही रह गई। राजमती के वस्त्र, जल से भीग गये थे जिससे वह गिरनार की एक गुफा में आई। यह गुफा

निर्जन एवं एकान्त में है; ऐसा समझ कर राजमती ने अपने शरीर के समस्त वस्त्र गुफा में इधर उधर फैला दिये।

राजमती; अनुपम रूपवती थी। उसके रूप लावण्य का वर्णन करते हुए उत्तराध्ययन सूत्र में, विद्युत्प्रकाश और मणिप्रभा की उपमा दी है। राजमती के तेजोमय रूप से गुफा में प्रकाश-सा हो गया। उसी गुफा में, भगवान अरिष्टनेमि के छोटे भाई रथनेमिजी—जो भगवान के साथ ही संयम में प्रवर्जित हुए थे—ध्यान करके खड़े थे। राजमती ने, मुनि रथनेमि को नहीं देखा था, परन्तु रथनेमि ने, राजमती को देख लिया। राजमती के रूप लावण्य को देख कर रथनेमि मुनि का चित्त विचलित हो उठा। उन्होंने संयम की मर्यादा त्याग कर राजमती से भोग की याचना की। पुरुष की बोली सुन कर, और पुरुष को सामने देख कर राजमती विस्मित, लज्जित एवं भयभीत हुई। वह अपने शरीर को गोप कर बैठ गई और भय के मारे काँपने लगी। राजमती को भयभीत देखकर, रथनेमि अपना परिचय देते हुए राजमती को धैर्य देने लगे और कहने लगे, कि डरने की आवश्यकता नहीं है। राजमती को यह जान कर धैर्य हुआ, कि यह पुरुष और कोई नहीं है, किन्तु भगवान अरिष्टनेमि के लघुभ्राता और मेरे देवर ही हैं। उन्होंने, रथनेमि को फटकारते हुए उचित उपदेश दिया, जिससे रथनेमि संयम पर दृढ़ हुए।

रथनेमि के चित्त की विचलता मिटा कर, राजमती, वस्त्र पहन आगे बढ़ीं। आगे जाते हुए उन्हें उनकी बिछुड़ी हुई सखियाँ भी मिल गईं। राजमती, अपनी सखियों सहित भगवान की सेवा में उपस्थित हुईं और दीक्षा ग्रहण करके चालीस सहस्र सतियों की नायिका बनीं।

भगवान अरिष्टनेमि, लगभग सात सौ वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते रहे। उनके वरदत्त आदि अठारह गणधर थे। अठारह सहस्र मुनि थे। चालीस सहस्र सतियाँ थीं। एक लाख उनहत्तर हजार श्रावक थे और तीन लाख उंचालीस हजार श्राविकायें थीं।

अपना निर्वाणकाल समीप जान कर, भगवान अरिष्टनेमि, पाँच सौ छत्तीस मुनियों को साथ लेकर, रेवतिगिरि पर पधार गये, वहाँ भगवान ने अनसन कर लिया, जो एक महीने तक चलता रहा। अन्त में, आषाढ़ शुक्ला ८ को चित्रा नक्षत्र में संध्या समय भगवान अरिष्टनेमि, सब कर्मों का अन्त करके मोक्ष पधारे।

भगवान अरिष्टनेमि, तीन सौ वर्ष तक कौमारावस्था में रहे। चव्वन दिन, छद्मस्थ-अवस्था में विचरते रहे। शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार भगवान ने सब एक हजार वर्ष का आयुष्य भोगा और भगवान नमीनाथ के निर्वाण को पाँच लाख वर्ष बीत जाने पर निर्वाण प्राप्त किया।

## प्रश्नः—

१—भगवान श्री अरिष्टनेमि के कितने पूर्व-भव का वृत्तान्त जानते हो ? नाम मात्र बताओ ?

२—भगवान अरिष्टनेमि के माता-पिता का नाम क्या था ?

३—भगवान अरिष्टनेमि के बाल्यकाल की कोई विशेष घटना आपको मालूम है ?

४—द्वारका नगरीके निर्माण का क्या कारण था ?

५—भगवान अरिष्टनेमि का विवाह किसने, किस घटना को दृष्टि में रख कर किसके साथ रचाया था ?

६—भगवान अरिष्टनेमि और सती राजमती का कितने भव से साथ था ?

७—राजमती के साथ विवाह करने के लिये भगवान बारात जोड़ कर गये फिर बिना विवाह किये ही क्यों लौट आये ?

८—राजमती और रथनेमि के बीच में कौन-सी घटना किस प्रसंगवश घटी थी और क्या परिणाम निकला ?

९—भगवान अरिष्टनेमि के निर्वाण में और भगवान मुनिसुव्रत के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा ?

# उपसंहार

पुस्तक के प्रारम्भ में "आवश्यक दो शब्द" शीर्षक में पुस्तक के विषयों पर संकेत-कर-चुका हूँ फिर भी कुछ बातें यहां स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ।

१—प्रार्थना में परमात्म भक्ति एवं आत्म तत्व के भाव कूट २ कर भरे हैं। अतः इसे अवश्य कंठस्थ कर इसे ध्वनी पूर्वक गाने से परम आनन्द होता है।

२—तीर्थङ्कर भगवान के चरित्रों में पूर्वभवों का जो वृत्तान्त दिया है, वह सहेतु है। इससे हमारे जीवन पर काफी प्रभाव पड़ता है। कई एक घटनाएँ महत्वपूर्ण शिक्षाओं से भरी पड़ी हैं। जैसे—

भगवान श्री शान्तिनाथ के चरित्र से—

(अ) कुलीन मनुष्य किसी भी हालत में मर्यादा विरुद्ध आचरण नहीं करता।

—सत्यभामा कपिल के वृत्तान्त से।

(क) स्त्री का मोह बड़े २ उत्तम पुरुषों को भी भान भुला देता है।

—इन्दुसेन बिन्दुसेन के युद्ध के वृत्तान्त

(ख) महापुरुष अपने बचाव के लिये किसी का अहित नहीं होने देते अपितु कल्याण ही करते हैं।

—श्रीवीजय के वृत्तान्त से।

(ग) एक भव में आराधन किया हुआ धर्म या विद्या अन्य भवों में भी फलदायक होते हैं।

—श्री अनन्तवीर्य वासुदेव के वृत्तान्त से।

(घ) महापुरुष किसी के कल्याण में बाधक नहीं होते, उदारता उनका स्वाभाविक गुण होता है।

—कनकश्री के वृत्तान्त से।

(च) धर्म कर्तव्य और शरणागत के प्राण को महा मूल्यवान मान कर महापुरुष स्वयं के प्राण दे देते हैं पर शरणागत को नहीं देते।

—श्री मेघरथ महाराज के वृत्तान्त से।

(छ) प्रलोभन में आकर अपने सत्य शील को न त्यागना, दृढ़ रहना ही उत्तम पुरुषों का धर्म है।

—श्री मेघरथ महाराजा के वृत्तान्त से।

(ज) सम्पूर्ण ऋद्धि समृद्धि और वैभव पाकर भी लिप्त नहीं होना किन्तु आत्मतत्व को दृष्टि बिन्दु बनाये रखना।

—श्री शान्तिनाथ भ० के वृत्तान्त से।

## भगवान श्री मल्लिनाथ के चरित्र से—

(अ) संसार व्यवहार की तरह धर्माराधन में भी मित्रों को याद करना और साथ लेना।

—श्री महाबल राजा के वृत्तान्त से।

(क) ऊंच नीच की भावना और भेद भाव पूर्वक अपने को बड़ा मान कर कपट भाव से प्रवर्तना आत्म गुण का विघातक है।

—श्री महाबल मुनि के वृत्तान्त से।

(ख) उचस्थिति को प्राप्त होने पर भी माता पितादि वृद्धजनों का बहुमान रख कर उनका विनय करना।

—श्री मल्लिकुमारी के वृत्तान्त से

(ग) औदारिक शरीर की वास्तविकता को समझ कर भान नहीं भूलना, मोह में न फंसना।

—श्री मल्लिनाथ के चरित्र से।

(घ) स्त्री पर्याय को तुच्छ या न्यून मानना हमारी अज्ञानता है। इस पर्याय में भी महा विभूति पैदा होती है।

भगवान श्री अरिष्टनेमि के चरित्र से—

(अ) पति पत्नी की एक निष्ठा प्रीति भवान्तर में भी कल्याणप्रद बनती है। सत्पुरुषों की संगति निष्फल नहीं जाती।

—भवान्तरों के वृत्तान्त से।

(क) पूर्व काल के राजा अपने नगर में श्री सन्तों को देख कर प्रसन्न होते थे और उससे अपना गौरव मानते थे।

—राजा अपराजित के वृत्तान्त से।

(ख) जो गरीब अनाथ की पुकार सुने वही महापुरुष होता है। वे जबानी बकवाद की अपेक्षा कार्य करके आदर्श उपस्थित करते हैं।

—भगवान के विवाह के वृत्तान्त से

(ग) एकान्त स्थान में भी सावधानी रखना चाहिये तथा प्रसंग पड़ने पर अपनी आत्मा को काबू में रख कर हित शिक्षा देनी चाहिये।

—सती राजमती के वृत्तान्त से।

(घ) कुलीन मनुष्य को स्थान च्युत होने पर भी आसानी से स्थान पर लाया जा सकता है।

—रथनेमि राजमती के वृत्तान्त से।

# शुद्धि पत्र

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १ | ५ | संहिता | संहिता |
| १ | ११ | सहित | समिति |
| ९ | १८ | अगवार | इनगारे |
| १३ | १ | माम | काम (फुटनोट में) |
| १४ | २१ | लड़े | लाई |
| १८ | १२ | इच्छामि | मिच्छामि |
| १९ | २२ | दयाके | दयाहं |
| २१ | १३ | भर द | भरहार, |
| २२ | २ | मथा | तथा |
| २२ | ४ | जम | जर |
| २२ | १४ | गार | गार है। |
| २४ | ३ | निवता | निवा म |
| २६ | ११ | निशान | निमित्त |
| २९ | अन्तिम | देप | द्वेष |
| ३१ | १८ | ० | बाह्यपूर्वेन्द्रिय |
| ३४ | ६ | अणोदरी | ऊणोदरी |
| ३४ | ७ | कायवलेश | कायक्लेश |
| ३५ | १ | जीव | जीव का |
| ४२ | १५ | मतंग | मतंगा |
| ६३ | ५ | ओरगाँ | ओसगाँ |
| ७० | १३ | हुआ | हुए |
| ७४ | १ | आदे | आदा |
| ८३ | १५ | करेंगे | करेंगे |
| ८३ | ७ | कप | गप |
| ८७ | १२ | परायण | पारायण |
| ८० | ७ | इच्छा-सियों | की इच्छा सियो |
| ८८ | १२ | राजकु-मारी | राजकुमारी |
| ९८ | ८ | केवल-ज्ञानतत्त्व | केवलज्ञानका वस्त्र |
| ११३ | ११ | काली | काली |
| ११३ | ११ | सामग्री | सामग्री |
| १२४ | ५ | अपवा | आदया |
| १२८ | २० | (पाद पाद्यादि) | (पादप्रक्षालादि) |
| १३१ | ३ | आचर्य | आचार्य |
| १५४ | ५ | वैवति-गिरी | रैवतगिरी |